वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 44
ISBN 978-93-82071-10-5

उपकार

(छत्रचूड़ामणि ग्रंथ के आधार से)

–: लेखिका : –

गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव, 11 अक्टूबर 2011 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर
में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित
''प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष'' के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.-250404,

फोन नं.- (01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

द्वितीय संस्करण	**वीर नि. सं. 2538, वैशाख शु. 3**	**मूल्य**
1100 प्रतियाँ	**24 अप्रैल 2012, अक्षय तृतीया**	**16/-रु.**

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशन एवं सम्पादक :–

स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

———सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन———

प्रथम संस्करण-प्रतिया-3300

कम्पोजिंग – ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

प्रकाशकीय

-स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश
रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

साहित्य समाज का दर्पण है। हर व्यक्ति गतिशील है और नई खोज में विश्वास करता है। बड़े-बड़े पुराण ग्रंथों को पढ़ने का आज किसी को समय है नहीं इसीलिए उन पुराण ग्रंथों के कथानकों को गागर में सागर के सामन इस छोटी सी पुस्तक में समाहित किया गया है। आज की नई पीढ़ी विशेषकर नये-नये आकर्षक साहित्य को पढ़ने में रुचिवान होती है। यह कृति उसी का एक रूप है। प्राचीन कथानक और अधुनिक परिवेश यह उसकी विशेषता है।

वैसे तो पूज्य माताजी अष्टसहस्री, नियमसार जैसे उच्चकोटि के ग्रंथों का अनुवाद करने में अपना अमूल्य समय व्यतीत करती हैं फिर भी हम लोगों के विशेष आग्रह के कारण ही इस प्रकार के रोचक कथानकों को पूज्य माताजी ने लिखकर दिया यह उनका बड़ा ही उपकार है।

आशा है पाठकगण इस छोटे से कथानक को पढ़कर जीवन निर्माण में इससे कुछ ग्रहण करेंगे यही इसकी सार्थकता होगी।

□□

प्रस्तावना

-आर्यिका चन्दनामती

इस भौतिक युग में प्रत्येक प्राणी स्वयं को इतना व्यस्त महसूस करता है कि उसे भगवद्भक्ति के नाम पर एक मिनट की भी फुर्सत नहीं होती। इसका कारण हैं– भौतिक चकाचौंध, जिसमें फँसकर मानव एक मशीन की तरह कार्य करता हुआ अपने जीवन के चंद क्षणों को व्यर्थ ही गँवा देता है और अंत में यदि माप तोल करके देखा जाये, तो अपने हिस्से में कुछ भी नहीं रह जाता है, केवल धन ऐश्वर्य की हाय-हाय करके पाप का बोझा सिर पर चढ़ जाता है जो कि नरक और निगोद के दुःखों का द्वार है।

किन्तु जो समझदार प्राणी होते हैं, वे भौतिक सुखों को भोगते हुए भी अपने जीवन को आदर्श बनाने के लिए महापुरुषों के कहे हुए मार्ग का अनुसरण करते हैं। हाँ, यह अवश्य कहना पड़ेगा कि प्राचीन परम्पराचार्यों ने जिनमुख से उद्भूत वाणी को ग्रंथ रूप में निबद्ध कर हमारे ऊपर असीम उपकार किया है लेकिन अनेक प्रकार की उलझनों में उलझा हुआ मनुष्य उन ग्रंथों के स्वाध्याय करने में परिश्रम नहीं करना चाहता, उसे तो चाहिए केवल सरलतापूर्ण ढंग से लिखे गये उपन्यास जिससे कि आगे भी धार्मिकता के प्रति अभिरुचि जागृत हो।

युवा पीढ़ी को धर्मज्ञान से अनभिज्ञ तथा उनकी नवीन शैली में रुचि देखकर हमारे बुजुर्गों ने गुरुजनों और गणमान्य विद्वानों के सामने इस तरह की पुस्तकें लिखने की माँग की और

उनके परिश्रमानुसार कुछ पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ, जिससे युवा पीढ़ी का आकर्षण धर्म की ओर बढ़ा।

वर्तमान शताब्दी में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित जो साहित्य का प्रकाशन हुआ है, वह वास्तव में बहुत ही सुन्दर है। हमें इस बात का गौरव है कि पूज्य माताजी की सर्वतोमुखी दृष्टि से साहित्य सृजन आज की ही युवा पीढ़ी को नहीं, युग-युग तक धर्म को जन-जन तक पहुँचाने में सक्षम होगा। इसके पूर्व भी पूज्य माताजी द्वारा औपन्यासिक शैली में लिखे गये ग्रंथों की शृँखला में यह 'उपकार' नाम की पुस्तक आपके हाथ में आ रही है।

इसमें महापुरुष कुमार जीवन्धर के परोपकारमय जीवन पर प्रकाश डाला गया है। जीवंधर चंपू, क्षत्रचूड़ामणि आदि जितने भी उनके जीवन से संबंधित पुराण ग्रंथ हैं, उनके आधार पर यह जीवनी लिखी गई है। जिनका जीवन ही परोपकार में बीता उन कुमार जीवन्धर के जीवन को कौन नहीं जानता ? बचपन में ही उन्होंने एक कुत्ते जैसे पामर प्राणी को महामंत्र णमोकार सुनाकर उसका जो उपकार किया, वह कुत्ता भी उस उपकार का बदला जन्म-जन्मान्तर तक भी नहीं भूला और अवसर पड़ने पर अपने उपकारी का उपकार करता रहा। साधु पुरुष अपने ऊपर किए गये उपकार को हमेशा याद रखते हैं।

''न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरंति''

□□

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान– टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि– आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति– अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र–** गोयल, **नाम–** कु. मैना

माता-पिता– श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत– ई. सन् 1952 में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा– चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम– क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा– वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व– अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं 250 विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका। सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय

मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा – हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा – भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा – पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा – 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा – जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

□□

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 में हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं–

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के माध्यम से लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है–कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना एवं नवग्रहशांति जिनमंदिर।

5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।

6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

11. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

12. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना से समन्वित हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित भगवान ऋषभदेव दीक्षा तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं शारीरिक सुख की प्राप्ति करें।

□□

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत "वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला" की स्थापना सन् 1974 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली,दिल्ली।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-91
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन म.प्र.।

17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल जैन पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले), गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)

संरक्षक

1. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन एवं स्व. श्रीमती आदर्श जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
2. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन, सनावद (म.प्र.)।
3. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।

4. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
5. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
6. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
7. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द गाँधी के सुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी फलटन (महा.)।
8. श्री शांतिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा.।
9. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
10. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
11. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
12. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
13. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज, नई दिल्ली।
14. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
15. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।
16. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)
17. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।
18. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी. विवेक विहार, दिल्ली
19. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उ.प्र.)।
20. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
21. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्कलेव, दिल्ली।
22. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज.)।
23. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की समृति में इन्दर चन्द सुमेरमल जैन पांड्या शिलांग (मेघालय)।
24. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)
25. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंज मण्डी (राज.)।
26. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)।
27. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्ला देहरादून (उ.प्र.)।

28. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
29. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।
30. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
31. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
32. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
33. स्व. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
34. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
35. श्रीमती सुषमा देवी ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
36. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
37. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
38. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
39. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।
40. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
41. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
42. श्री प्रभा चन्द गोधा, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-6 (राज.)।
43. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।
44. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन, चूड़ीवाली गली, चौक बाजार, लखनऊ (उ.प्र.)।
45. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
46. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) 35 एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपकना, रांची (बिहार)।
47. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-1/20 मॉडल टाउन, दिल्ली।
48. श्री कैलाश चंद जैन, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
49. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, 405 डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली।
50. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
51. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द, चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहटौर (बिजनौर)।
52. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।

53. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गौहाटी।
54. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी 1/122, फेज-2, अशोक विहार, दिल्ली-110052।
55. श्री चन्द्रमोहन बंसल, 11, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-5।
56. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)
57. श्री सतीश चन्द जैन, 31 सिविल लाइन, म.नं.-10, सेक्टर-2, टाइप-5 झांसी।
58. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
59. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
60. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन,सीतापुर (उ.प्र.)।
61. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
62. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा पूरणटरा पूरणजाट, जैन विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
63. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड़ (उ.प्र.)।
64. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन 31, सिविल लाईन, सीतापुर।
65. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
66. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
67. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
68. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।
69. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।
70. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।
71. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
72. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार, मेरठ।
73. श्रीमती अरुण कुमार नांद्रेकर ध.प. भाऊ साहेब नांद्रेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई।
74. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, पो. बुरहानपुर, (म.प्र.)।
75. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रावंका, पो. बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।
76. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।
77. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
78. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।

79. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।
80. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
81. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
82. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
83. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
84. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, पो. कोपरगाँव (महा.)।
85. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
86. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
87. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन बरुआ सागर (उ.प्र.)।
88. श्री पारसमल डूंगरमल जी पाटनी पो. मेड़तासिटी, नागौर (राजस्थान)।
89. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले) प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-92।
90. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
91. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
92. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
93. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
94. कुमारी अदिती सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
95. श्रीमती मंजूलता ध.प. प्रभाचन्द गोधा-नया बाजार, अजमेर।
96. श्री सुचेद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
97. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।
98. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
99. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी)राज.।
100. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
101. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
102. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
103. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
104. श्री राजेन्द्र कुमार पचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
105. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।
106. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)
107. डॉ. विमला जैन "विमल" ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

□ □

उपकार

(1)

सिंहासन में जड़े हुए पंचवर्णी रत्नों पर सूर्य का प्रकाश पड़ने से स्फटिक पाषाण से निर्मित दीवालों पर इंद्रधनुष की शोभा झलक रही है। इससे अकाल में भी मेघों की आशंका हो जाने से कृत्रिम मयूर पंख फैलाए हुए होने से मानों नाच ही रहे हैं। लटकती हुई फूलों की मालाओं से सुगंधि को चुराकर उन्मत्त हुआ पवन मंद-मंद गति से बहता हुआ मानो अपनी चपलता को ही सूचित कर रहा है। महाराजा सत्यंधर मध्य के रत्न सिंहासन पर आरूढ़ हैं और वारांगनाएँ चमर ढोर रही हैं।

मंत्रिगणों को पता चला कि महाराज महारानी विजया में अत्यधिक आसक्त होने से अब राज्य से पूर्णतया उपेक्षित हो रहे हैं, बल्कि उन्होंने काष्ठांगार मंत्री को ही अपना राज्यभार सौंपने

का निर्णय कर लिया है। हम लोग परम्परागत इस 'राजपुरी' के मंत्री रह आये हैं, अतः इस समय हम लोगों का यही कर्त्तव्य है कि राजा के समक्ष उनके कर्त्तव्य का निवेदन करें। ऐसा विमर्श करके वे लोग राजदरबार में पहुँचते हैं और यथोचित आसन पर बैठकर महराज से निवेदन करते हैं—

"हे देव! यद्यपि आप स्वयं सर्व विषयों में पूर्णतया निष्णात हैं, आपसे कुछ भी अविदित नहीं है फिर भी हम लोग आपसे कुछ निवेदन करने के लिए उपस्थित हुए हैं। हमारी विज्ञप्ति पर आप ध्यान दीजिए। राजाओं को अपने हृदय का भी विश्वास नहीं करना चाहिए पुनः अन्य जनों की तो बात ही क्या है ? फिर भी मैं सभी पर करता हूँ ऐसा ही दिखाना चाहिए। राजन्! जो परस्पर में विरोध न करते हुए धर्म, अर्थ और काम का सेवन करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं और क्रम से मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते हैं अतः राजाओं को धर्म और अर्थ का त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्म ही सुखों का मूल है। आपने जो इस राज्य का भार काष्ठांगार के कंधों पर डालना चाहा है उस पर विचार करके ही कार्य करना चाहिए अन्यथा पश्चात्ताप ही हाथ लगेगा।"

इत्यादि शिक्षा के वचन महाराज के हृदय में स्थान को नहीं पा सके। चूँकि 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' यह सूक्ति सार्थक ही है। अतः राजा काष्ठांगार को राज्यभार की व्यवस्था सँभलाकर आप अन्तःपुर में निवास करने लगे। यद्यपि राजा के अनेकों रूपलावण्यवती रानियाँ थीं; पर राजा का विजया रानी में ही अत्यधिक प्रेम था।

एक दिन प्राभातिक क्रियाओं से निवृत्त होकर रानी विजया महाराज के पास आकर यथोचित विनयपूर्वक अर्धासन पर बैठ गयीं और बोलीं—"आर्यपुत्र! आज पिछली रात्रि में मैंने तीन स्वप्न देखे हैं उनके फल को जानने की अतीव उत्कण्ठा हो रही है। शाखाओं से विस्तृत व मनोहर एक अशोक वृक्ष देखा, किन्तु क्षण भर में वह वज्र के गिरने से पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसी क्षण उस वृक्ष की जड़ से एक नूतन कोपलों वाला छोटा-सा अशोक वृक्ष उत्पन्न हो गया, उस वृक्ष के शिखर पर स्वर्णनिर्मित मुकुट है और उसमें आठ मालायें लटक रही हैं।"

स्वप्न को सुनते ही राजा अपने अमंगल को समझकर भी रानी को दुःख न हो इसलिए पुत्रजन्म की खुशी को बिखेरते हुए के समान ही मंद मुस्कान के साथ बोले—

"हे कल्याणवति! मुकुट सहित बाल अशोक वृक्ष महान् अभ्युदयशाली पुत्र के जन्म को सूचित कर रहा है और उसकी आठ मालायें आठ पुत्रवधुओं की सूचना दे रही हैं।"

"स्वामिन्! प्रथम दिखा हुआ विशाल अशोक वृक्ष जो नष्ट हो गया उसका क्या फल है ?"

"वह भी कुछ कह रहा है।"

इतना सुनते ही रानी पति के अमंगल की आशंका से एकदम आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और मूर्च्छित हो गई। राजा भी यद्यपि अपने मरण की सूचना से और रानी के मोह से अत्यंत दुःखित हुआ था फिर भी वह अनेक उपचारों से रानी को सचेत करके उन्हें समझाने लगा—

"देवी! स्वप्न के देखने मात्र से क्या तुम मुझे मरा समझ रही हो ? क्या विपत्ति को दूर करने के लिए शोक करना उचित है ? क्या गर्मी की पीड़ा को शांत करने के लिए कोई अग्नि में प्रवेश करते हैं ? नहीं, नहीं, प्रिये! तुम्हें भी तो ऐसा करना उचित नहीं है, देखो! विपत्ति का प्रतिकार तो धर्म से ही हो सकता है अतः धर्म का ही आश्रय लेओ और शोक का परित्याग करो।"

राजा के द्वारा मधुर शब्दों से सान्त्वना दिये जाने पर विजया रानी भी 'भाग्य के आधीन संसारी जीवों की गति होती ही है' ऐसा समझकर सन्तोष को प्राप्त हो गई। अनंतर कुछ दिन बाद रानी ने गर्भ धारण किया। रानी को गर्भवती देखकर राजा को स्वप्न का फल स्पष्ट दिखने लगा और अब पश्चात्ताप से आहत हो सोचने लगा–

अहो! दुर्भाग्य से मैंने मंत्रियों के वाक्य नहीं माने, अब क्या होगा ? अकाल में की गई वाञ्छा क्या मनोरथ को सफल कर सकती है ? फिर भी उसने सोचा कि यह शरीर तो क्षणिक है ही; इसमें क्या मोह करना, किन्तु कीर्तिरूपी शरीर में मोह करना ही उचित है अतः अपने इस राजवंश की रक्षा के लिए प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा सोचकर राजा ने एक सुंदर मयूर यंत्र बनवाया और रानी के दोहला की पूर्ति करते हुए उसमें बैठकर अनेकों बार आकाशमार्ग में विचरण करते थे और रानी को भी प्रसन्नमना रखने का उपाय करते हुए मनोहर बगीचों में क्रीड़ा किया करते थे।

(2)

वर्तमान में राजसत्ता को सँभालते हुए राजा काष्ठांगार विचारशील मुद्रा में अपने आसन पर बैठे हुए हैं। पास में कुछ मंत्रीगण व विश्वस्तजन भी बैठे हुए हैं। विचारविमर्श चल रहा है–

''मंत्रियों! मुझे कहते हुए भी लज्जा आती है, मैं क्या कहूँ ? फिर भी कहना ही पड़ रहा है। कतिपय दिनों से रात्रि में स्वप्न में राजा का विरोधी कोई देव मुझे यह कहता है कि 'तुम राजा को मारकर अपनी रक्षा करो', पता नहीं इसका फल अच्छा होगा या बुरा ? फिर भी हमें अब क्या करना चाहिए सो अब आप लोग कहिये ?''

मंत्रीगण इस कपट वाक्य को सुनते ही सन्न रह गये। फिर भी अपने प्राणों की परवाह न करके और साहस करके धर्मदत्त नाम के प्रमुख मंत्री ने कहना प्रारंभ किया—

''आयुष्मान्! राजद्रोह का उपदेश देने वाले इस देवता पर आपको विश्वास क्यों हो रहा है ? अरे! राजा लोग तो समस्त देवताओं की शक्ति को परास्त करने वाले होते हैं। राजद्रोही मनुष्य अपने समस्त वैभव एवं कुल का संहार तो कर लेता है किन्तु अपयश अपने मुख को काला करके अंत में दुर्गति में ही ले जाता है। जो स्वामीद्रोही हैं वे नियम से आत्मद्रोही हैं और पाँचों पापों के कर्ता महापातकी माने जाते हैं क्योंकि राजद्रोह, गुरुद्रोह और मित्रद्रोह ये सब प्रकारान्तर से आत्मद्रोह ही हैं चूँकि इनसे आत्मा का घात होता ही होता है। जिन सत्यंधर महाराज

ने आपके ऊपर अति प्रेम होने से विश्वास करके कतिपय मंत्रियों के मना करने पर भी आपको अपना विशाल वैभव सौंप दिया है, क्या उन्हीं को मारकर आप सुखी रह सकते हैं ?''

इत्यादि वचनों के मध्य ही काष्ठांगार का मथन नाम का साला बीच में ही बोल पड़ा—

''बस, बस! रहने दीजिए, आप अपने उपदेश को बंद कीजिए। महाराज ने जो भी कहा है उस पर ही हमें विचार करना है, क्या देवता का तिरस्कार करके उसकी बात को टाल करके भी कोई सुखी रह सकते हैं ? क्या महाराज का पराधीन जीवन ही तुम्हें इष्ट है ? नहीं नहीं, हमें तो देवता के अनुकूल ही चलना होगा।

राजन्! आप शीघ्र ही सेनापति को आदेश दीजिए, बस....''

इस तरह से इस मथनकुमार ने तत्क्षण ही काष्ठांगार को अत्यधिक उकसा दिया। इधर राजा ने भेद खुल जाने के भय से कुछ स्वामिभक्त मंत्रियों को जान से मरवा दिया और कुछ लोगों को जेल में ठूँस दिया तथा अपने भक्त राजद्रोही मंत्रियों व अपने साले के साथ निर्णय करके शीघ्र ही राजा सत्यंधर के महल के चारों तरफ सेना खड़ी कर दी।

उसी समय द्वारपाल ने स्वामी को सूचना दी। अकस्मात् ऐसी दुर्घटना को सुनकर महाराज सत्यंधर क्रोध से भड़क उठे। तत्क्षण ही सिंहासन से उठ खड़े हुए और हाथ में तलवार उठा ली। रानी विजया उस समय महान् शोक से पीड़ित हो आसन से गिर पड़ी। अपनी प्रिया को मूर्च्छित हुई व गर्भिणी अवस्था में

देखकर राजा पुनः वापस लौटकर रानी को उठाकर प्रेम से समझाने लगे—

"प्रिये! इस अवसर पर शोक करने से बस हो। क्या दीपक के बुझ जाने पर अंधकार को बुलाना पड़ता है ? इस समय हमारे पाप का उदय आ चुका है तुम्हें अपने कुरुवंश की वृद्धि के लिए गर्भस्थ बालक की रक्षा करना ही उचित है। अतः तुम्हें अब यहाँ से जाना ही होगा। देखो! यह यौवन, शरीर और सम्पत्ति यदि नष्ट होती है तो उसमें आश्चर्य की क्या बात है ?

'संयुक्तानां वियोगश्च, भविता हि नियोगतः।
किमन्यैरंगतोऽप्यंगी, निःसंगो हि निवर्तते।।'

जिनका संयोग हुआ है उनका वियोग नियम से होगा ही होगा, और तो क्या ? इस शरीर से यह आत्मा भी निःसंग होकर ही निकल जाती है। अनादिकालीन इस संसार में कौन तो हमारा बंधु नहीं हुआ है और कौन हमारा शत्रु नहीं हुआ है ? अर्थात् सभी के साथ सभी संबंध होते ही आ रहे हैं।....'

इत्यादि प्रकार से उपदेश देने पर रानी के मन में शांति नहीं हुई तो भी राजा ने उसे मयूरयंत्र में बिठाकर अपने हाथ से शीघ्र ही आकाश में उस यंत्र को उड़ा दिया और आप युद्ध करने के लिए निकल पड़े। बहुत देर तक युद्ध करते हुए समर भूमि में बहती हुई खून की नदी को देखकर राजा का चित्त एकदम विकल हो उठा। वे युद्ध से विरक्त होकर अपनी आत्मा को समझाने लगे–

"हे आत्मन्! विषयों की आसक्ति का फल तूने प्रत्यक्ष में

ही अनुभव कर लिया है अब विष सदृश इन विषयों की इच्छा छोड़। देख! तेरे द्वारा यह सर्व वस्तुएँ पूर्व भोगी हुई ही भोगी जा रही हैं इसलिए उच्छिष्टवत् इस राज्य में तुझे क्यों प्रेम हो रहा है? देख! महापुरुषों का कथन है कि—

'त्यज्यते रज्यमानेन, राज्येनान्येन वा जनः।
भज्यते त्यज्यमानेन, तत्त्यागोऽस्तु विवेकिनाम्।।'

जिन वस्तुओं को यह भोगने की इच्छा करता है वो इसे छोड़ देती हैं और जिनको यह छोड़ देता है वे इसके पास दौड़ती हैं अतः त्याग करना ही विवेकी पुरुषों का कर्त्तव्य है।"

इत्यादि भावनाओं को भाते हुए राजा उत्कृष्ट वैराग्य को प्राप्त होकर सर्व परिग्रह को और अपने शरीर को छोड़कर स्वर्गसंपत्ति का भोक्ता हो गया अर्थात् परिग्रह का त्याग करते ही काष्ठांगार ने उन्हें मार दिया और वे मरकर स्वर्ग में देव हो गये। राजा की मृत्यु के बाद काष्ठांगार की कृतघ्नता की निंदा करते हुए सारी प्रजा में हाहाकार मच गया। उधर आकाशमार्ग में मँडराते हुए मयूरयंत्र ने राजपुरी के समीप श्मशान भूमि में विजया रानी को गिरा दिया। यह दुर्दैव का विलास सूर्य को भी असह्य हो गया अतएव वह भी अस्ताचल को चला गया। दशों दिशाओं में अपने केशों को फैलाकर ही निशादेवी नृत्य करने लगी, शायद उसने महाराज की प्रिय वल्लभा और भविष्य की राजमाता को कोई शत्रु के दूत देख न लेवें इसीलिए ही विजया को अपने अंचल में छिपा लिया था।

राजा के मरणसूचक व काष्ठांगार के विजयसूचक बाजों

की ध्वनि सुनकर रानी ने पति के मरण का निश्चय कर लिया और पति के विरहजन्य वेदना के दुःख के भार से अतिशय खिन्न हो मूर्च्छित हो गयी। उसी समय रात्रि में उसने काष्ठांगार रूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान ऐसे पुत्ररत्न को जन्म दिया। पुत्र प्रसव के बाद होश में आयी हुई रानी अनेक प्रकार से विलाप करने लगी—

"अहो दुर्दैव! तूने यह क्या किया ? हाय! मैंने प्रातःकाल में ही अपने प्राणनाथ राजा सत्यंधर से सत्कार को प्राप्त किया था और अपराह्न में ही वैधव्य अवस्था को प्राप्त होकर धन और जन से सर्वथा शून्य होकर इस श्मशान भूमि की शरण में पड़ी हुई हूँ। प्रियपुत्र! तू यदि राजमहल में जन्मा होता तो कैसे-कैसे उत्सव मनाये गये होते ?....अरे रे! तेरे जन्म के समय कोई गीत गाने वाला भी तो नहीं रहा है। तेरी रक्षा भी इस निर्जन वन में कैसे होगी ? इत्यादि रूप से विलाप करती हुई रानी पुनः-पुनः मूर्च्छित हो जाती थी। इसी बीच में बालक के पुण्य से प्रेरित हुई एक वनदेवता ने धाय का वेश लेकर वहाँ आकर रानी को सत्यंधर के मरण का समाचार स्पष्ट सुनाया और वियोग दुःख से पुनः मूर्च्छा को प्राप्त हुई रानी को सचेत करके सान्त्वना देते हुए कहा—

"हे देवि! तुम इस तरह खेद क्यों कर रही हो ? देखो! तुम्हारे पुत्र के हाथ-पैरों में कमल, रथ, कलश, पताका आदि साम्राज्य सूचक लक्षण विद्यमान हैं। यह समुद्रांत पृथ्वी का पालन करेगा। इसके रोने का शब्द राज्याभिषेक के समय के

मांगलिक शंख ध्वनि को प्रगट कर रहा है। आप इसके संरक्षण की चिंता छोड़िये। कोई वैश्यपति अभी आकर इसे ले जाकर 'महाराज का पुत्र' समझकर इसका लालन-पालन करेगा...।"

उसी बीच में मृतपुत्र को हाथ में लिए हुए किसी को आते देख तथा धाय की अत्यर्थ प्रेरणा से विजया ने अन्य कुछ उपाय न देखकर पुत्रस्नेह से द्रवित हो बालक को दूध पिलाकर खेद से दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए उस बालक को पृथ्वी पर सुला दिया। उसके हाथ में पिता के नाम से युक्त अंगूठी पहना दी और प्रणामपूर्वक बोली कि—हे जिनशासन के देवता! आप लोग इसकी रक्षा करें, ऐसा कहकर वह तुरंत ही किसी वृक्ष के पीछे छिप गई।

गंधोत्कट वैश्य मृत पुत्र को वहीं छोड़कर निमित्तज्ञानी की आज्ञा से घूमते-घूमते वहाँ पहुँचा और हर्ष से विभोर हो राजपुत्र को दोनों हाथों से उठाया, तब शिशु ने छींका। उसी समय आकाश से 'जीव'—जीवित रहो यह आशीर्वाक्य सुनकर रोमांचित होता हुआ घर आ गया। पत्नी से बनावटी क्रोध दिखाते हुए बोला—"तुमने जीवित पुत्र को मरा हुआ कैसे कह दिया ?"

सुनंदा भी मृतक पुत्र को जीवित हुआ पाकर आनंद में विभोर हो गई। इधर देवता भी उस समय विजया को उसके पीहर पहुँचाने के प्रयत्न में सफल न हो सके, तब उसने दण्डकारण्य के तापस आश्रम में उसे पहुँचा दिया। रानी ने वहाँ पर आभूषण त्याग करके तपस्विनी का वेष बनाया एवं जिनेन्द्रदेव को अपने हृदय में स्थापित करके रहने लगी। वह खेत से अपने हाथ से

बीनकर लाए हुए धान्यों से अपना उदर निर्वाह करती थी और तापसियों के पाले हुए हिरण शिशु तथा गाय के बछड़ों को हाथ से हरी-हरी घास खिलाकर पुत्रवत् उन्हें प्यार करती रहती थी। साधु पत्नियाँ भी विजया को अत्यधिक स्नेह देकर उसको प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया करती थीं।

यह है विधि की विडंबना! जो रानी राज्य वैभव का उपभोग करते हुए सर्वश्रेष्ठ थी वही आज इस दीन-हीन दशा में दुःख सागर के मध्य स्थित है। फिर भी उसने अपने धैर्य और विवेक को नहीं छोड़ा और न प्राणत्याग ही किया बल्कि अपने योग्य व्रतों का पालन व अपने शील का रक्षण करते हुए कष्ट के समय को शांति से निकाल रही है।

(3)

सेठ गंधोत्कट आज हर्ष से फूले नहीं समा रहे हैं। अपने अतुल खजाने को खोल दिया और खजांची से कह दिया है कि तुम आज हर किसी याचक को मुँहमाँगा धन देते जावो। सैकड़ों प्रकार के बाजों की ध्वनि से आकाश और दिशाएँ भी मुखरित हो रही हैं। पताकायें और तोरणद्वारों की सजावट सभी को अपनी ओर आकृष्ट कर रही हैं। राजा काष्ठांगार को यह मालूम होते ही उसने समझा कि यह उत्सव हमारे राज्य प्राप्ति की खुशी में ही मनाया जा रहा है। अतः उसने वैश्यपति गंधोत्कट को बुलाकर कुरुवंश की राज्यपरम्परा से परिपालित सबका सब राज-खजाना उसे दे दिया। साथ ही गंधोत्कट के कहने के

अनुसार उसने यह भी आज्ञा दे दी कि उस समय उस नगर में जितने भी बालक उत्पन्न हुये हों उन सबका गंधोत्कट के घर में ही उसके पुत्र के साथ लालन-पालन हो।

गंधोत्कट ने भी जन्म से सातवें दिन उस बालक का पूर्व से संकल्पित 'जीवंधर' यह नामकरण किया और अनेक पुत्रों के साथ भेद-भाव न रखते हुए उसका लालन-पालन करने लगे। अहो! विधि की विचित्रता को तो देखो, यह पुण्यशाली बालक न मालूम अपने ही वैभव का उपयोग कर रहा है। कुछ दिन बाद सुनंदा ने पुनः एक पुत्ररत्न को जन्म दिया जिसका नाम नंदाढ्य रखा गया। जैसे नक्षत्रों के मध्य चंद्रमा शोभता है और इंद्र के यहाँ कल्पवृक्षों के मध्य पारिजात शोभता व वृद्धिंगत होता है वैसे ही कुमार जीवंधर सब पुत्रों के मध्य शोभते हुए वृद्धिंगत हो रहे हैं। धीरे-धीरे बालसुलभ लीलाओं से सबके हर्षसमुद्र की वृद्धि करते हुए क्रम से पाँचवें वर्ष में प्रवेश करते हैं।

एक दिन कुछ बालकों के साथ राजपुरी के बाहर बगीचे में खेल रहे हैं। उसी समय एक महात्मा आ जाते हैं और बालकों में इन्हें अतीव तेजस्वी देखकर आकर्षित होते हुए पूछते हैं—

"यहाँ से गाँव कितनी दूर है ?"

"ओहो! बड़े आश्चर्य की बात है, जो कि आप बालकों को खेलते हुए भी देखकर 'गाँव कितनी दूर है' ऐसा पूछ रहे हैं। अरे! जब बालक यहाँ खेल रहे हैं तब गाँव पास ही होगा, इसका तो सहज ही अनुमान होना चाहिये था; इसमें पूछने की भला क्या बात थी? क्या धुएँ को देखकर अग्नि का व ठंडी हवा को

देखकर जलवृष्टि का अनुमान नहीं हो जाता है ?''

इत्यादि रूप से बालक के वचनचातुर्य को देखकर महात्मा जी अतीव प्रभावित हुए कुमार उन्हें क्षुधायुक्त समझकर अपने साथ अपने घर ले आये और रसोइये को आदेश दिया कि इन्हें भोजन कराइये और आप भी हाथ-पैर धोकर भोजन करने बैठ गये। रसोइये ने भोजन परोसा, किन्तु कुमार उस समय 'सारा भोजन गरम-गरम है, मैं कैसे खाऊँ ?' ऐसा कह कर रोने लगे। तब साधु ने कहा—''प्रिय कुमार! तुम जैसे महान् बुद्धि के धनी बालक का अकारण ही यह रोना क्यों ?''

जीवंधर मुस्करा उठे और बोले—''वाह महात्मा जी! आपको मालूम नहीं कि रोने में कितने गुण होते हैं ? देखो न, मैं बताता हूँ—

'रोने से सारा का सारा कफ निकल जाता है, दोनों नेत्र निर्मल हो जाते हैं, नाक का मल भी साफ हो जाता है तथा शिर में रुककर भ्रम—उन्माद या पागलरूप दोषों को उत्पन्न करने वाला दूषित जल निकल जाता है और इतनी देर में भोजन भी ठंडा हो जाता है। इतने ही नहीं, और भी बहुत से परिचित गुण रोते समय उत्पन्न होते हैं।''

इत्यादि वचामृत कर्णपुट से पीकर साधु महाराज अपार भूख की वेदना से व्याकुल हुए भोजन करने लगे। पाँच सौ बालकों के लिए व और भी बहुतों के लिये बनाये गये सारे के सारे भोजन को खाकर भी महात्मा तृप्त नहीं हो रहे थे। हाथ में चावल के ग्रास को लिये जीवंधर भी उसे मुँह में न रखकर

आश्चर्य से आँख फाड़ते हुए उसे देखते ही रह गये। दया के समुद्र वे कुमार करुणा से आप्लावित हो गये और उसी क्षण उन्होंने उस महात्मा को अपने हाथ का ही यह ग्रास दे दिया। उस ग्रास को लेकर खाते ही महात्मा की क्षुधापिशाचिनी ऐसी पलायमान हुई कि जैसे सूर्य को देखकर अंधकार पलायमान हो जाता है। बहुत दिनों से उत्पन्न हुई भस्मक व्याधि से पीड़ित उन महात्मा की जठराग्नि उस समय एकदम शांत हो गई। अहो! पुण्यशाली जीवों के हाथ से दिये हुए भोजन का कितना महत्व है ? देखो तो सही, जिस भस्मक व्याधि से व्याकुल महामुनि ने अपने दिगम्बर वेष को तीनलोक पूज्य जैनेश्वरी मुद्रा को छोड़कर ढोंगी महात्मा के वेष में घूमते हुए उदर भरने के लिए न जाने कहाँ-कहाँ का और न जाने कितना भोजन खाया था ? आज वे अपने शरीर में पूर्ण स्वस्थता का अनुभव कर रहे हैं।

महात्मा जी मन में सोच रहे हैं। अहो! इस परमोपकारी कुमार का क्या प्रत्युपकार करना...? कुछ क्षण बाद उन्होंने निश्चय किया कि विद्यादान से बढ़कर तीन जगत् में कोई भी ऐसी श्रेष्ठ वस्तु नहीं है कि मैं इसे देकर इसके ऋण को चुका सकूँ। पुनः वे सेठ शिरोमणि गंधोत्कट से बोलते हैं–

''हे महाभाग! यह आपका सुपुत्र महान् है और विशेष होनहार है। अतः मैं इसे सम्पूर्ण प्रकार की विद्याओं और कलाओं से अलंकृत करना चाहता हूँ।''

सेठजी को उस समय ऐसा लगा कि जैसे आकाश से रत्नों की वर्षा हो रही हो। अथवा उनकी इच्छा को पूर्ण करने वाला

कोई कल्पवृक्ष ही घर में आ गया हो। गद्‌गद् होकर बोले—

"महाराज! इससे बढ़कर और मुझे क्या चाहिये ? बिना बुलाये ही देव मेरे घर पर आ गये हैं। ओहो! मैं बहुत ही भाग्यशाली हूँ। आप इस पुण्यात्मा के साथ-साथ मेरे इन सभी बालकों को भी विद्यादान देकर समुन्नत कीजिए।

(4)

राजपुरी के विशाल जिनमंदिर की पूर्वदिशा में एक बहुत ही बड़ा विद्यामंडप है। उसमें स्वर्णमयी मंगल कलश, झारी आदि मंगल द्रव्य, मालायें, धूपघट आदि यथास्थान रखे हुए हैं। दीवालों पर बने हुए चित्र मानो साक्षात् बोल ही रहे हैं। देवों की प्रतिमायें यथास्थान विराजमान हैं। चारों तरफ से मंगल वाद्यों की ध्वनि स्वर्गपुरी में भी सूचना पहुँचा रही है।

गंधोत्कट ने शुभ मुहूर्त में जिनेन्द्रदेव का महामह नामक अभिषेक और पूजन संपन्न किया। पुनः श्रुतदेवता की आराधना की गई। अनंतर स्वर्णनिर्मित पत्तों पर तुषरहित धुले हुए अखंड तंदुलों पर विधिवत् गुरु श्री आर्यनंदी ने 'सिद्धं नमः' इस मंगलपद को लिखाकर व उच्चारण कराकर 'अ आ' इत्यादि वर्ण मातृकाओं का लेखन कराया.....।

कुमार जीवंधर ने कुछ ही दिनों में व्याकरण, साहित्य, अलंकार, छंदशास्त्र आदि विद्याओं को तथा गज, अश्व, रत्न आदि की परीक्षा एवं शस्त्र कलाओं को सीख लिया और उस समय के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् हो गये, सो ठीक ही है क्योंकि कुमार

की गुरु के प्रति असीम भक्ति थी—

'गुरुभक्तिः सती मुक्त्यै क्षुद्रं किं वा न साधयेत्।
त्रिलोकीमूल्यरत्नेन, दुर्लभः किं तुषोत्करः।।'

उत्तम गुरुभक्ति मुक्ति के लिए हो जाती है तो भला वह अन्य तुच्छ कार्यों को क्यों नहीं सिद्ध करेगी? देखो! तीन लोक ही है कीमत जिनकी ऐसे रत्नों से क्या भूसे का खरीदना दुर्लभ है?

एवं जो गुरुद्रोही हैं। गुरुओं की निंदा, अवमान, अवर्णवाद या तिरस्कार करने वाले हैं उनकी स्थिति देखिये—

'गुरुद्रुहां गुणः को वा, कृतघ्नानां न नश्यति।
विद्यापि विद्युदाभा स्यादमूलस्य कुतः स्थितिः।।'

उपकार के न मानने वाले कृतघ्नी गुरुद्रोहियों के कौन-कौन से गुण नष्ट नहीं हो जाते हैं ? प्रत्युत सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। उनकी सर्व विद्यायें भी बिजली के समान क्षणमात्र में समाप्त हो जाती हैं सो ठीक ही है क्योंकि बिना जड़ के वृक्ष की स्थिति कैसे संभव है ? जो गुरुद्रोही है उन पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। क्योंकि जो गुरुद्रोह से ही नहीं डरते हैं उनको अन्य द्रोह से क्या डर होगा ? इसलिए शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह भव से भीत और गुरु के प्रति विनीत होवे। भ्राता नंदाढ्य ने व सभी मित्रों ने भी कुमार के साथ सर्व विद्याओं का मनन कर लिया।

एक दिन आर्यनंदी महात्मा एकान्त में बैठे थे, केवल कुमार जीवंधर उनके पास में थे। उन्होंने एक कथा सुनाना प्रारंभ कर दिया—"कुमार! सुनो, मैं तुम्हें एक रोमांचकारी और सच्ची

घटना सुनाता हूँ। विजयार्ध पर्वत की श्रेणी पर एक लोकपाल नाम के विद्याधर राजा थे। उन्होंने मेघ का विनाश देखकर विरक्त हो जैनेश्वरी दीक्षा ले ली और घोरातिघोर तपश्चरण करने लगे किन्तु तीव्र असाताकर्म के उदय से उन्हें भस्मक व्याधि हो गई। अशक्य प्रतीकार होने से मैंने अपने चारित्ररत्न को छोड़ दिया और कुछ दिन बाद तुम्हारे हाथ के एक ग्रास मात्र से उस व्याधि को उपशांत हुआ देखकर मैंने तुम्हें सर्वश्रेष्ठ विद्यारत्न प्रदान किया है। कुमार! तुम राजा सत्यंधर के पुत्र हो और तुम्हारे पिता को काष्ठांगार ने मार दिया है।''

कुमार अपने गुरु की शुद्धि और क्षत्रियत्व सुनकर प्रसन्न हुए तथा काष्ठांगार को पितृघाती सुनते ही एकदम क्रोध में भड़क उठे, उनका क्षत्रियत्व तेज उमड़ पड़ा। तत्क्षण वे खड़े हो गये और धनुष-बाण को सम्भालने लगे। गुरु ने उनके इस संभ्रम को देखा तो उन्हें भरसक रोकने का प्रयत्न किया किन्तु कुमार शांत नहीं हुए तब गुरु ने कहा—

''वत्स! एक वर्ष तक क्षमा करो, यही गुरुदक्षिणा है।''

यद्यपि कुमार आपे से बाहर हो चुके थे फिर भी वे गुरु के स्नेहवश होकर उनकी इस आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सके। जैसे विषवैद्य सर्प की क्रोधाग्नि को भीतर ही भीतर रोक देता है ऐसे ही भीतर ही भीतर क्रोध को दबाकर ऊपर से शांत हो जाने के बाद गुरु ने पुनः उन्हें बहुत सी शिक्षा दी। चूँकि गुरु के वचन कुपथ के नाशक ही होते हैं।

''बेटा! क्रोध के हेतु उपस्थित होने पर भी यदि क्रोध न

आवे यही तो धीरता है। यदि तुम उपकार करने वाले पर क्रोध करते हो तो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों का एवं जीवन का भी नाश करने वाला यह क्रोध है। इस पर ही तुम क्रोध क्यों नहीं करते हो ? यह क्रोधाग्नि पहले अपने आपको ही जलाती है पश्चात् अन्य को जलावे या नहीं भी जलावे। प्रिय पुत्र! यदि शास्त्र पढ़ने के बाद भी कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान नहीं रहे तो पढ़ने का श्रम व्यर्थ ही है। तत्त्वज्ञान पाकर भी यदि मनुष्य क्रोध से अविवेकी बनता है तो उसका वह ज्ञान व्यर्थ ही है। देखो! हाथ में दीपक लेकर यदि कुएँ में कोई गिरता है तो उसको दीपक लेने से क्या लाभ हुआ ? अतः हे शिष्योत्तम! तत्त्वज्ञान के अनुकूल हो तुम्हें आचरण करना चाहिए.....।''

इत्यादि प्रकार से गुरु ने बहुत सी नीतिप्रद शिक्षाएँ देकर क्षत्रिय के कर्त्तव्य का तथा श्रावक के धर्म का भी उपदेश देकर कहा कि 'अब तुम श्रावक धर्म का पालन करो और मैं मुनि होकर कर्मों का नाश करूँगा। इस वचन से कुमार तो शोक से व्याकुल हो ही गये, उनके अश्रुधारा बरसने लगी। साथ ही गंधोत्कट आदि जनों ने भी बहुत ही दुःख माना, किन्तु उन आर्यनंदी महात्मा ने भगवान् महावीर के पादमूल में पहुँचकर पुनर्दीक्षा लेकर तपश्चरण करते हुए अंत में निर्वाण धाम को प्राप्त किया।

एक समय भीलों ने राजपुरी के ग्वालों की सारी गायें चुरा लीं। काष्ठांगार ने उनसे युद्ध के लिए सेना भेजी किन्तु वह हारकर वापस आ गई। तब ग्वाले के प्रमुख नंदगोप की प्रार्थना से काष्ठांगार ने यह ढिंढोरा पिटवाया कि जो भी भीलों से गायें

छुड़ाकर लायेगा उसे सात स्वर्ण पुत्तलिकायें व नंदगोप की कन्या दी जावेगी। कुमार ने सुनते ही डिंडिभ बंद करवा दिया और भीलों को जीतकर गायें छुड़ा लीं।

सर्वत्र प्रसन्नता का वातावरण हो जाने के बाद नंदगोप ने स्वामी के कर में जलधारा डाली। स्वामी ने भी जलधारा को ग्रहण करते हुए कहा कि 'मेरा मित्र पद्मास्य ही इसके योग्य है' चूँकि हम दोनों में गात्र-मात्र का ही अंतर है। ऐसा कहकर पद्मास्य मित्र के साथ नंदगोप की कन्या गोविंदा का विवाह करवा दिया। चूँकि कुरुवंश शिरोमणि स्वामी ने विचार किया कि 'नीच कुलों की स्त्रियों के साथ संपर्क करना अविवेकीजनों को ही सुलभ है विवेकी को नहीं।' यह मित्र इनके अनेकों मित्रों में से एक था जो कि ग्वाल पुत्र ही था। इन सभी मित्रों व माता-पिता को प्रसन्न करते हुए कुमार हमेशा अपने शौर्य को प्रगट करते हुए रह रहे हैं।

(5)

नौका में बैठे हुए मनुष्य समुद्र में लहरों की चंचलता को देख रहे हैं और साथ-ही-साथ अपने मन-समुद्र के अंदर उठते हुए अनेकों विचाररूपी लहरों को भी देख रहे हैं। वे विचार तरंगों में क्षणमात्र में अपने घर पहुँच कर पत्नी-पुत्र आदि से मिलने को उत्कंठित हो रहे हैं, तो कोई अपने धन उपार्जन के कष्ट को स्मरण करके रोमांचित हो रहे हैं। इसी बीच में जोरों का तूफान उठा, नौका डूबने लगी। मल्लाह ने सूचना कर दी कि अब मेरे

वश में पतवार नहीं है, लोग घबराने और चिल्लाने लगे, हाहाकार मचाने लगे।

राजपुरी के वणिक् सेठ श्रीदत्त लोगों को उपदेश देने लगे—"बंधुओं! जो मनुष्य सर्प से डरता है क्या वह उसके मुँह में हाथ डालेगा ? कभी नहीं, वैसे ही यदि आप लोग विपत्ति से डरते हैं तो शोक का त्याग कीजिए, शोक से विपत्ति का नाश नहीं होता। निर्भय होइये, जो होना है सो होगा। देखो! तत्त्वज्ञान ही जीव को दोनों लोकों में सुख देने वाला है। भगवान् का नाम लीजिये जिससे आप अगली गति को तो सुधार लें....।"

इसी बीच में नौका डूब गई और श्रीदत्त का कठोर परिश्रम के कमाया हुआ सारा धन सागर के उदर में समा गया। जैसे-तैसे श्रीदत्त को एक काठ का सहारा मिला। उसके आधार से वे समुद्र तैर कर किनारे पर किसी अपरिचित स्थान पर पहुँच गए। वे मन ही मन संसार की स्थिति का चिंतवन कर ही रहे थे कि एक मनुष्य उन्हें सामने आते हुए दिखा। उससे उन्होंने अपनी सारी कथा कह सुनाई। वह सब सुनकर किसी बहाने उन्हें अपने साथ विजयार्ध पर्वत पर ले गया और बोला—

"महाभाग! इस विजयार्ध पर्वत पर नित्यालोकापुरी के राजा गरुड़वेग की रानी धारणी की कन्या का नाम गंधर्वदत्ता है। उसके जन्म समय ज्योतिषी ने बताया था कि यह राजपुरी के वीणाविजयी की भार्या होगी। अब यह युवती हो गई है। अतः गरुड़वेग ने मुझसे कहा कि राजपुरी के सेठ श्रीदत्त मेरे परम मित्र हैं तुम उन्हें ले आवो। उनकी आज्ञा से मैं केवल नाव

डूबने का भ्रम पैदा करके विद्या के बल से तुम्हें यहाँ लाया हूँ..।

इत्यादि समाचार सुनते ही सेठ जी प्रसन्न हो उठे। वे कुछ क्षण बाद अपने अभिन्न मित्र गरुड़वेग से मिलकर बहुत ही संतोष को प्राप्त हुए तथा उनकी इच्छानुसार गंधर्वदत्ता पुत्री को साथ लेकर राजपुरी आ गये। काष्ठांगार को सूचित कर घोषणा करवा दी कि जो वीणावादन में मेरी पुत्री को जीतेगा वही उसका पति होगा।

स्वर्ण, रजत और रत्नों से निर्मित स्वयंवर मंडप तो इंद्र की सभा को भी हँस रहा है। चमकते हुए माणिक्य, मरकत-मणि इंद्रधनुष की कल्पना उत्पन्न कर रहे हैं। सिंहासनों पर अनेकों देशों के राजपुत्र बैठे हुए हैं। एक-एक कर जो भी वीणा बजाते हैं वे गंधर्वदत्ता की वीणावादन चातुरी के आगे स्वयमेव लज्जित हो जाते हैं। कामदेव जीवंधर आकर वीणावादन के आसन पर आरूढ़ होते हैं। परिचारिकाओं द्वारा दी गई दो-तीन वीणाओं में वे केश, रोम, लव आदि दूषण बता देते हैं। तब संतोष को प्राप्त हुई गंधर्वदत्ता स्वयं अपने हाथ की सुघोषा नाम की वीणा उन्हें दे देती है। वे उसे ही पसंदकर बजाने लगते हैं–

जिनस्य लोकत्रयवंदितस्य प्रक्षालयेत्पादसरोजयुग्मम्।
नखप्रभादित्यसरित्प्रवाहैः संसारपंकं मयि गाढलग्नम्।।

वीणा की मधुरध्वनि को सुनते ही गंधर्वदत्ता इस पराजय को भी अपनी जय समझते हुए तत्क्षण ही उठकर स्वामी के गले में वरमाला डाल देती है। काष्ठांगार यह दृश्य देखकर ईर्ष्या से जल-भुन कर राजा को उकसाता है—

"अरे! देखो तो यह बर्तन आदि बेचने वाले का छोकरा और इस तरह हम लोगों के बीच में ऐसी कन्यारत्न को वरण कर ले यह कैसे संभव होगा ?"

तमाम राजाओं को युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए देख जीवंधर स्वामी ने रथ पर सवार होकर अपनी युद्ध की कला से सबको परास्त कर दिया। सेठ गंधोत्कट फूले नहीं समाये। अनंतर श्रीदत्त सेठ ने विद्याधर राजा गरुड़वेग द्वारा दी गई अनुपम संपत्ति के साथ अग्निसाक्षीपूर्वक जीवंधर कुमार एवं गंधर्वदत्ता का विवाह करके अपने को कृतकृत्य माना। जीवंधर कुमार भी उत्तम भोगों का अनुभव करते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करने लगे।

(6)

बसंत ऋतु अपनी प्राकृतिक मनोहर छटा बिखेरता हुआ जहाँ दंपत्तियों को उन्मत्त बना रहा है वहीं पर विरहणी स्त्रियों के लिए ग्रीष्म के संतोष से अधिक दुःखद प्रतीत हो रहा है। तमाम ग्राम निवासी अपनी-अपनी स्त्रियों को साथ में लेकर जलक्रीड़ा के लिए उद्यान में पहुँच रहे हैं। कुमार जीवंधर भी अपने मित्रों के साथ जलक्रीड़ा देखने के लिये निकल पड़े।

बगीचे में एक तरफ बहुत ही कोलाहल सुनायी दिया। ये लोग उधर बढ़े तो देखते हैं कि कुछ ब्राह्मण लोग हवन करने के लिए उद्यत हैं। उनकी कुछ सामग्री एक कुत्ते ने सूंघ लिया अतः दो चार ब्राह्मणों ने डंडे से उसे इतना मारा कि वह चीखता-चिल्लाता हुआ गिर पड़ा। पास में पहुँचते हैं तब तक वह सिसक

रहा था बिल्कुल मरणासन्न स्थिति में था। करुणामूर्ति कुमार दया से आर्द्र हो उसके जिलाने का अब कोई उपाय न समझ उसके कान में णमोकार मंत्र का उपदेश देने लगे। यह मंत्र निर्वाण पथ के पथिकों के लिए पाथेय—नाश्ता है। वह कुत्ता यद्यपि अत्यधिक वेदना से व्यथित हो रहा था फिर भी वह स्वामी के प्यार भरे शब्दों से अपनी वेदना को हल्की मानता उनके द्वारा उपदिष्ट मंत्र को सुनने लगा। इसी बीच उसके प्राण निकल गये। अड़तालीस मिनट के भीतर में ही वह पूर्ण यौवन शरीर वाला यक्षदेवों का अधिपति सुदर्शन देव हो गया।

अवधिज्ञान से उसने अपना समाचार जान लिया, तत्क्षण ही वह उसी सुदर्शनदेव के रूप में आ गया और कुत्ते को मंत्र सुनाते हुए स्वामी को नमस्कार किया। कुमार ने एक बार तो आश्चर्यचकित हो पूछा—"तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? और मुझसे क्या कार्य है ?"

"स्वामिन्! आप मुझे वही कुत्ता समझिये। आपकी मैं किन शब्दों में प्रशंसा करूँ ? आपको यदि मैं मुझ पर अनुग्रह करने वाला कहूँ तो आपकी मनोवृत्ति की सीमा हो जायेगी। किन्तु आप तो तीनों लोकों का उपकार करने वाले हैं, चरम शरीरी हैं...।"

उसको देव हुआ देख कुछ लोग आश्चर्य करने लगे किन्तु कुमार को आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि 'मुक्ति को प्रदान करने वाले इस मंत्र द्वारा क्या देवपद पाना दुर्लभ है ?....

यक्षेन्द्र ने पुनः-पुनः निवेदन किया—"स्वामिन्! यदि किसी समय कोई कष्ट आवे तो यह कृतज्ञचर स्मरण करने योग्य है।"

अनंतर प्रणाम करके वह स्वस्थान को चला गया। इधर कुमार मित्रों के साथ वृक्ष के नीचे बैठकर कुछ क्षण महामंत्र की महिमा व कृतज्ञचर देव की कृतज्ञता की चर्चा कर ही रहे थे कि सहसा दो महिलाएँ हाथ में डिब्बी लिये हुए आकर बोलीं—

"स्वामिन्! गुणमाला और सुरमंजरी दोनों सखियों ने आपस में प्रेम में चर्चा करके यह शर्त कर ली है कि हम दोनों में से जिसका चूर्ण सर्वोत्तम होगा वही स्नान करेगी, दूसरी बिना स्नान किये वापस चली जाएगी। अतः आप निर्णय दीजिये कि कौन-सा चूर्ण उत्तम है ?"

जीवंधर ने दोनों को देखकर कहा—"गुणमाला का यह चूर्ण उत्तम है।"

सुरमंजरी की दासी रोष करते हुए बोली—"वाह! मैंने तो सुना था कि 'संसार में विवादों के निर्णय करने वाले एक जीवंधर कुमार ही हैं' और यहाँ तो आप मुझे पक्षपाती ही दिखाई देते हैं। भला बताइये, उस चूर्ण को अच्छा कहने का क्या प्रमाण है ?"

जीवंधर कुमार ने दोनों हाथों की चुटकियों में दोनों चूर्ण लेकर अलग-अलग दिशा में ऊपर उछाला कि तत्क्षण ही गुणमाला के चूर्ण पर भ्रमर आ गये। दासी खिन्नमना हो गई। फिर कुमार ने कहा—"गुणमाला का चूर्ण ऋतु के अनुकूल बनाया गया है और सुरमंजरी का चूर्ण वर्षाऋतु के अनुकूल है। अतः इस समय के लिए वह उत्तम नहीं माना जाएगा।..."

दासी के मुख से सर्व वृत्तांत विदित कर गुणमाला के द्वारा

अत्यन्त अनुनय विनय किये जाने पर भी सुरमंजरी वापस चली गई। गुणमाला भी कुछ क्षण बाद वापस लौट रही थी कि मार्ग में एक मदोन्मत्त हाथी ने उपद्रव कर दिया। उस समय वापस आते हुए कुमार ने देखा कि सब लोग यत्र-तत्र भाग रहे हैं। नौकर भी गुणमाला की पालकी छोड़कर भाग खड़े हुए। केवल एक सहेली उसकी रक्षा में तत्पर है। वे शीघ्र ही आगे बढ़े। हाथी भी उन पर दौड़ा किन्तु स्वामी ने उसे देखते ही देखते परास्त कर दिया।

गुणमाला घर पहुँची किन्तु वह जीवंधर कुमार के प्रति आसक्ति हो जाने से व्याकुल हो रही थी। उसने दूसरे दिन क्रीड़ा शुक—सिखाये हुए पालतू तोते को समझाकर उसे पत्र देकर स्वामी के पास भेजा। स्वामी ने भी पत्र पढ़कर उसे अपनी इच्छा सूचित करने वाला पत्र देकर वापस कर दिया। सहेली द्वारा माता को यह समाचार मालूम हुआ। उसने हर्षविभोर हो पति से कहा। सच है! कन्या के लिए योग्य तो क्या सर्वश्रेष्ठ वर मिल जाने पर भला कौन माता-पिता प्रसन्न नहीं होगा।

कुछ ही दिनों में जीवंधर को प्राप्त कर गुणमाला कृतार्थ हो गई। गंधर्वदत्ता और गुणमाला का प्रेम सासु और ससुर को सदैव प्रसन्न बनाये हुए है।

(7)

काष्ठांगार महाराज जलते हुए अंगारे के समान सत्यंधर की प्यारी प्रजा को संतृप्त कर रहे हैं। न्याय और अन्याय को

तो वे समझते ही नहीं हैं। मात्र राज्य के मद व स्वार्थ में अंधे हो रहे हैं, विचारधाराओं में उनकी भृकुटी चढ़ी हुई हैं। इसी बीच कुछ महावत आते हैं और सूचना करते हैं—

"पृथ्वीपते! जिस दिन से आपके प्रधान हाथी को जीवंधर ने अपने कड़े से ताड़ित किया है और उसे अंकुश की मार लगाई है, उस दिन से हाथी ने अभी तक एक ग्रास भी कुछ नहीं खाया है। सभी वैद्य अनेकों उपचार कर हार चुके हैं और हम लोग भी उसकी अनुनय विनय करके हार चुके हैं.....।"

काष्ठांगार क्रोध से एकदम भड़क उठते हैं—"अरे रे! यह वही दुष्ट है जिसने भीलों की सेना जीती। पुनः गंधर्वदत्ता को हस्तगत किया, अनंतर गुणमाला को विवाहा...ठीक, अब इसका अंत आ चुका है...।

मंत्रियो! शीघ्र ही शस्त्रधारी सैनिकों को भेजो जो उसे पकड़ कर ले आवें।"

"जो आज्ञा महाराज!"

जीवंधर कुमार योद्धाओं से घिरे हुए मकान को देखकर बाहर निकले और युद्ध के लिए सन्नद्ध होने लगे कि इतने में ही गंधोत्कट सेठ ने आकर रोक दिया और अतुल संपत्ति के साथ कुमार को भी साथ लेकर काष्ठांगार के पास पहुँचकर बोले—"राजन्! इस बालक का अपराध क्षमा किया जाय..."

"बस बस हटो, तुम दूर हटो। कोतवाल! इसे शीघ्र ही प्राणदण्ड दिया जाय।"

बेचारे गंधोत्कट किंकर्तव्यविमूढ़ हो वापस आये और

बिलखती हुई सुनंदा को समझाने लगे कि 'मुनि के वचन स्मरण करो यह तद्भव-मोक्षगामी है इसे कौन मार सकता है ?'

प्रजा भी कहने लगी—अहो! इस दुष्ट ने जब अपने स्वामी राजा सत्यंधर को ही मार डाला तब भला यह अन्य पाप से क्यों डरेगा ? हाय! इस पापी ने व्यर्थ ही कुमार को कष्ट दिया है...।

इधर जीवंधर स्वामी उस दुष्ट काष्ठांगार को उसी समय परलोक पहुँचा सकते थे किन्तु 'गुरु के वचन अनुल्लंघ्य हैं अभी एक वर्ष नहीं हुआ है' ऐसा सोचकर क्रोध को पीकर उन दुष्टों के साथ चलने लगे। इसी बीच उन्होंने यक्षेन्द्र का स्मरण किया। वह तत्क्षण आकर मारने वाले जनों की भीड़ से कुमार को उठाकर आकाशमार्ग से ले गया। चंद्रोदय पर्वत पर स्थित अपने दिव्य भवन में दिव्य सिंहासन पर विराजमान करके अपनी देवांगनाओं के साथ नाना वाद्यों की ध्वनिपूर्वक क्षीरसागर के जल से भरे कलशों द्वारा स्वामी का अभिषेक किया और बोला—"हे पूज्य! आपने अपवित्र कुत्ते के शरीर में रहने वाले मुझे पवित्र कर दिया है अतः मैं आपका अभिषेक कर रहा हूँ और आपका नाम भी 'पवित्र कुमार' कहा जाना चाहिए।"

इत्यादि प्रकार से सम्मान करके उनके भोजन-पान आदि की सारी व्यवस्था करते हुए कुछ दिन उसने अपने स्थान पर ही उन्हें ठहराया। पुनः उसने स्वामी को तीन विद्यायें प्रदान कीं— 1. इच्छित रूप बना लेना, 2. मनमोहक गान गाना और 3. हालाहल विष दूर कर देना तथा दिव्यज्ञान से बतलाया कि

आप एक वर्ष में ही राज्य प्राप्त कर लेंगे....इत्यादि। कुछ दिन तक स्वामी वहाँ रहे पुनः तीर्थवंदना की भावना से जाने को उद्धत हुए देख यक्षेन्द्र ने अतीव विनय भक्ति करके उन्हें उचित मार्ग बताकर विदाई दी।

स्वामी निर्भय विचरते हुए एक वन में देखते हैं कि तमाम हाथियों के झुण्ड के चारों तरफ भयंकर दावानल अग्नि प्रज्वलित हो रही है, तमाम जीव-जंतु छटपटा रहे हैं। स्वामी के हृदय में करूणा का समुद्र उमड़ पड़ा, उनको बचाने की इच्छा से वे व्याकुल हो उठे। उपद्रव दूर होने हेतु वे नेत्र निमीलित कर स्थिर खड़े होकर जिनेन्द्रदेव का ध्यान करने लगे।

अहा! 'स्वामी के पुण्य से जैसे उन मेघ देवताओं को प्रेरणा ही दी गई हो ? चारों तरफ घटायें घिर आईं, बादल गरजने लगे और मूलसाधार वर्षा शुरू हो गई। सच है, परोपकार की उत्कृष्ट भावना से क्या नहीं होता है ? स्वामी के ऊपर जब विपत्ति आई तब वे किंचित् भी विषाद को प्राप्त नहीं हुए तथा सुदर्शन देव द्वारा संपत्ति को प्राप्त कर भी फूले नहीं किन्तु हाथियों के उपसर्ग से व्याकुल हो उठे, अत्यंत दुःख का अनुभव करने लगे और जलवर्षा के बाद बहुत ही संतुष्ट हुए। 'स्वसुख-दुःख में हर्ष विषाद न करके पर के सुख-दुःख में सुख-दुःख मानना यही तो महापुरुषों का लक्षण है और इससे विपरीत होना क्षुद्र पुरुषों का लक्षण है।

वहाँ से निकलकर स्वामी अनेकों तीर्थों की वंदना करके एक जगह पहुँचे। वहाँ की यक्षिणी देवी ने स्वामी को अन्न-वस्त्र

आदि प्रदान करके बहुत ही सत्कार किया। धार्मिक मनुष्य देवों द्वारा भी पूजे जाते हैं, मनुष्यों की तो बात क्या ?

पुनः वे पल्लवदेश की चंद्राभा नगरी में पहुँचे। वहाँ के राजा की बहन को सर्प ने डस लिया था, वह मरणासन्न थी। हजारों वैद्यों के हार जाने पर राजा ने यह घोषणा करा दी कि 'जो मेरी बहन का विष दूर करेगा उसे अपने आधे राज्य सहित इस बहन को भी दे दूँगा। अपनी विषापहारिणी विद्या द्वारा स्वामी ने उसका विष दूर कर दिया। राजा लोकपाल ने स्वामी के रूप को देखकर यह निर्णय कर लिया कि ये कोई उच्चकुलीन महापुरुष ही हैं। पुनः बोले—

'हे महाभाग! मेरी बहन के पुण्योदय से ही आप यहाँ पधारे हैं। सो अब मेरी तुच्छ भेंट स्वरूप इस पद्मा को और मेरे आधे राज्य को स्वीकार कीजिए।''

''ठीक।''

इस प्रकार स्वीकृति देकर स्वामी ने उस पद्मा को और आधे राज्य को प्राप्त किया। और धर्मध्यान करते हुए सुखपूर्वक समय बिताने लगे...।

(8)

किसी दिन आधी रात के समय किसी को बिना कुछ कहे ही स्वामी उस नगरी से निकल गये। पद्मा जाग्रत् होने पर रोने लगी...। राजा ने भी शोकाकुल हो चारों तरफ अपने किंकर भेज दिये, किन्तु स्वामी नहीं मिले...।

वे पवित्र जिनमंदिरों की वंदना करते हुए एक वन में चित्रकूट नामक तापसाश्रम में पहुँचे। मार्ग की थकान दूर करने हेतु वहाँ ठहरे। पुनः उन पंचाग्नि आदि मिथ्या तप करने वाले तापसियों को अहिंसा धर्म का मर्म समझाया। सच्चे जैनधर्म का उपदेश दिया और इस कुतप से उन लोगों को छुड़ाकर सच्चे मार्ग में स्थापित कर दिया। रात्रि में वहीं विश्राम कर कुमार वहाँ से निकल कर आगे बढ़े।

दक्षिण देश में एक नगर के कुछ दूर उद्यान में पहुँचे। वहाँ सहस्रकूट जिनालय को देखकर अति प्रसन्न हुए। दरवाजे खोलकर अंदर प्रविष्ट हुए, दर्शन स्तोत्र पढ़कर पुनः-पुनः नमस्कार किया। बगीचे से खिले हुए फूल तोड़कर उनसे प्रभु की पूजा की। पुनः बाहर आकर बैठे ही थे कि बड़ी धूमधाम के साथ पास की क्षेमपुरी नगरी से सेठ सुभद्र जी आगे गये और उन्होंने यथोचित सम्मान करके कहना प्रारंभ किया—

''हे पुरुषपुंगव! इस जिनमंदिर के दरवाजे बहुत दिनों से स्वयं ही बद थे, हजारों प्रयत्नों से भी नहीं खोले जा सके थे। मेरी पुत्री के जन्म समय ज्योतिषी ने यह कहा था कि जिस किसी महापुरुष के आते ही स्वयं ये किवाड़ खुल जायेंगे यह कन्या उन्हीं की बल्लभा होगी। अतः आज मुझे आप जैसे महाप्रसाद के मिल जाने से बहुत ही प्रसन्नता हो रही है। सच है, जब आप मुक्तिमहल के कपाटों को खोलने में समर्थ हैं तो आपकी महिमा का क्या वर्णन करना।...''

कुछ क्षण प्रेमपूर्ण वार्तालाप के अनंतर वे सेठ उत्सव के

साथ कुमार को अपने महल में ले गये और शुभ मुहूर्त में अपनी कन्या क्षेमश्री का उनके साथ विवाह कर दिया।

(9)

जीवंधर कुमार जल्दी-जल्दी पैर उठाते हुए क्षेमपुरी से बाहर निकलते हुए सोच रहे हैं कि क्षेमश्री के जग जाने से वहाँ कोलाहल मचा होगा। सेठ सुभद्र जी आदि लोग मुझे आकर ढूँढ़ न लें अतः सूर्योदय के पहले ही नगर को पार कर किसी दिशा में वन का मार्ग पकड़ लेना है। इधर सुभद्र सेठ भी पुत्री के रुदन को सुनकर मोह में पागल से हो गये। यत्र-तत्र स्वयं ढूँढ़ा और किंकरों को भी भेजा, अंत में निराश होकर पुत्री को सान्त्वना देते हुए हृदय के शोक को हल्का करने लगे।

स्वामी किसी वन में पहुँचते हैं कि अनायास उनके मन में अपने बहुमूल्य रत्नों के अलंकार व वस्त्रों के दान का भाव जाग्रत हुआ। उसी समय भाग्य से एक किसान उन्हें सामने आते हुए दिखा, वे सोचने लगे—सम्यक्त्व व व्रतों से रहित जनों को दान देना पाप का ही कारण होगा अतः पहले इसे धर्मरत्न का दान देकर पुनः रत्नाभरणों का दान देऊँ। वे बोले—

"तुम कहाँ से आ रहे हो ? कहो कुशल तो है न।"

स्वामी के वचनों से वह हर्षविभोर हो नाच उठा। सो ठीक है क्योंकि यदि महापुरुष किसी साधारण व्यक्ति से बोल देते हैं तो उसे राज्याभिषेक से भी अधिक आनंद होता है। वह बोला—

"स्वामिन्! आपके प्रसाद से सर्व कुशल है, मैं एक साधारण

किसान हूँ अपने काम से ही इस वन में आ निकला हूँ"

"देखो! बिना धर्म के कुशलता क्या होगी ? धर्म ही इस जीव को सर्वसुख देने वाला है। यह आत्मा न नीच है-न ऊँच, न मनुष्य है न तिर्यंच। यह तो अपने द्वारा किये गये पुण्य-पाप से सुखी, दुःखी, धनी, निर्धन आदि होती है। प्रत्येक जीव की आत्मा अनंत शक्तिमान है। वह धर्म के बल से उस आत्मा को परमात्मा बना सकता है।

"देव! वह धर्म क्या है ?"

"वह धर्म सम्यक्त्व है, पाँच उदंबर व तीन मकार के त्याग रूप है वह अणुव्रतादि के भेद से बारह भेद रूप है....।"

"मुझे यह धर्म अवश्य प्रदान कीजिए।"

"हाँ, हाँ, तुम मद्य, मांस, मधु व उदंबर फलों का त्याग करो, मिथ्यादेव आदि की उपासना छोड़ो..। अच्छा! लो इन पन्नों के हार, कुंडल, कड़े आदि आभूषणों को...।"

स्वामी ने उसे सम्यक्त्व अणुव्रत आदि धर्मनिधि देकर पुनः पात्र समझकर उसे अपने उत्तम-उत्तम वस्त्र और सभी अलंकार दे दिये। मात्र धोती और उत्तरीय वस्त्र ही अपने पास शेष रखा। पुनः कुछ क्षण विश्रांति के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। उसी समय एक महिला आकर स्वामी के रूप से मोहित होकर कहती है—"हे नाथ! मैं विद्याधर कन्या हूँ। मुझे मेरे भाई के साले ने लाकर अपनी पत्नी के भय से यहाँ छोड़ा है अब आप ही मुझे सनाथ कीजिए।"

जीवंधर परस्त्री से विरक्त बुद्धि होते हुए मौन रहे और वहाँ

से चलने को उद्यत हो ही रहे थे कि अकस्मात् आवाज आई—

"प्राणवल्लभे! तुम कहाँ हो, कहाँ हो, जल्दी बोलो ?"

यह महिला भी झट वहाँ से निकल गई और वह विद्याधर पास आकर पूछने लगा—"हे पुरुषपुंगव! यदि आपने मेरी प्राणप्रिया को कहीं इस वन में देखा हो तो बताओ ? मैं उसे यहीं बिठाकर जल लेने गया। हाय!...मैं उसके बगैर जीवित नहीं रह सकता....।"

जीवंधर स्वामी ने उसे उसी महिला के कुशीलभाव के रहस्य को न बताकर मात्र उसे स्त्री के प्रति वैराग्य का उपेदश देना प्रारंभ किया किन्तु जैसे सूखे घड़े पर धूल नहीं चिपकती वैसे ही उस पर कुछ भी असर नहीं हुआ। पुनः कुमार वहाँ से अन्यत्र चले गये।

किसी एक बगीचे में एक राजपुत्र धनुष पर बाण चढ़ाकर एक आम्रफल को गिराने के प्रयत्न में लगा हुआ था किन्तु उसमें वह सफल नहीं हो सका। जीवंधन स्वामी वहाँ पहुँचते हैं। उसके हाथ से धनुष लेकर एक बार में उस फल को गिरा देते हैं। उन्हें देखकर और ये कोई महान् पुरुष हमारे भाग्य से पधारे हैं ऐसा समझकर उन्हें साष्टांग नमस्कार कर वह राजपुत्र बोलता है—"हे धनुर्विद्याविचक्षण! क्या आप मेरे आवास को अपने चरणरज से पवित्र करेंगे ?"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं, चल सकता हूँ।"

वे राजपुत्र पिता के पास पहुँचते हैं। हेमाभापुरी के राजा दृढ़मित्र कुमार का गाढ़ आलिंगन करके भावविभोर हो उठते हैं। पुनः स्नान, भोजन, सम्मान आदि के अनंतर प्रार्थना करते हैं—

"विद्वत् शिरोमणे! हमारे पुत्र आपके इस असंभाव्य आगमन का फल प्राप्त करें। आप इन विद्यार्थियों के साथ कुछ दिन व्यतीत कर इस पुरी को सार्थक करें।"

"ऐसा ही होगा।"

कुछ ही दिनों में सुमित्रकुमार आदि सभी राजपुत्र धनुर्विद्या में निष्णात हो गये।

पुनः राजा कुमार से निवेदन करते हैं—"हे कुमार! मुझे निमित्तज्ञानी ने ऐसा बताया था कि 'तुम्हारी पुत्री धनुर्विद्या के आचार्य की भार्या होगी।' अतः मूर्तिमान् क्षात्रधर्म के अवतार आप उसे पतिमती कीजिए।"

"तथास्तु।"

कुमार की स्वीकृति पाकर राजा ने असीम वैभव के साथ पुत्री कनकमाला का पाणिग्रहण कुमार के साथ करके अपने आपको कृतकृत्य माना।

कुमार अपने सालों के अतीव प्रेम से आकर्षित होते हुए कुछ दिन वहाँ निराकुलता से ठहरे।

(10)

जीवंधर कुमार निराकुलमना एकांत में बैठे हुए हैं। अकस्मात् एक महिला आती है और मुस्कुराती है। तब स्वामी उसके आने का कारण पूछते हैं—"तुम्हारा यहाँ आने का कारण ?"

"देव! मैं यहाँ और आयुधशाला में बिना किसी अंतर के एक ही समय आपको देख रही हूँ।"

"ऐं! ऐसी बात है।"

स्वामी ने आश्चर्य सहित हो विचार किया। क्या मेरा छोटा भाई नंदाढ्य तो नहीं आ गया है ? तत्क्षण ही वे उठ खड़े हुए और आयुधशाला में पहुँचे। नंदाढ्य ने साष्टांग नमस्कार किया और कुमार ने उसे उठाकर अकृत्रिम स्नेह से अपने वक्षस्थल से लगा लिया। नंदाढ्य ने अश्रुओं की धार से कुमार के वक्षस्थल के साथ-साथ अंतस्थल को पूर्णतया आर्द्र कर दिया।.... कुछ क्षण बाद एकांत में बैठकर जीवंधर ने पूछा—"प्रिय बन्धु! तुम यहाँ कैसे आये ?"

"अग्रज! जब आपको काष्ठांगार ने मारने का हुक्म दे दिया, तब हम लोग शोक से मूढ़ हो प्राण त्याग करने को ही उद्यत हो रहे थे कि मैं अकस्मात् भाभी गंधर्वदत्ता के निकट पहुँचा ...। हमारी व्यथा को देख उन्होंने कहा—"वत्स! तुम क्यों खेद करते हो ? तुम्हारे अग्रज सर्वतः सुखी हैं। उनको सुदर्शन यक्षपति ले गया है। आज तक वे जहाँ-जहाँ गये, उनका सम्मान हुआ है। वे सर्वत्र सम्पति और सुख का भोग कर रहे हैं। यदि तुम उनसे मिलना चाहते हो तो मैं तुम्हें भेजे देती हूँ। अभागिनी तो मैं ही हूँ जो कि पराधीन इस पर्याय में कहीं नहीं जा सकती....।"

अनंतर उन्होंने मुझे शय्या पर सुलाकर मंत्रपूर्वक यहाँ भेज दिया है और एक पत्र भी दिया। पत्र में गुणमाला के नाम विरह व्यथा का चित्रण करने वाली गंधर्वदत्ता के मानसिक दुःख को जानकर जीवंधर का हृदय दुःखी हुआ। किन्तु वे अपने हृदय

के दुःख बाहर न प्रगट करते हुए गम्भीर बने रहे। ...राजा दृढ़मित्र ने व अन्य परिवारजनों ने भी नंदाढ्य का जीवंधर के साथ सम्मान किया और बहुत ही संतुष्ट हुए।

एक समय राजमहल के सामने बहुत से ग्वाले आकर जोर-जोर से चिल्लाने लगे—महाराज! रक्षा करो, रक्षा करो! चोरों ने हमारी गायें लूट ली हैं।"

ससुर के द्वारा बहुत कुछ रोकने पर भी जीवंधर कुमार युद्ध के लिए चल पड़े। धनुष बाण लिये चोरों के सामने पहुँचते ही चोर प्रमुखों ने अपने-अपने नाम से अंकित बाण स्वामी के चरण के निकट छोड़े व सहसा आकर स्वामी के चरणों से लिपट गये। जीवंधर भी चोरों के बहाने अपने अभिन्न मित्रों को पाकर स्नेह से प्लावित हो गये। उस समय का उन सबके मिलन का दृश्य अपूर्व ही प्रतीत हो रहा था...।

स्वामी उन मित्रों से एकांत में सुख-दुःख का हाल पूछने लगे तब वे लोग कहने लगे—"स्वामिन्! आप के वियोग के शोक से विह्वल हुए हम लोग एक दिन भाभी के पास गये। उन्होंने अपनी विद्या के बल से आपका सारा समाचार जान लिया है। अतः उनके बताये हुए मार्ग से हम घोड़ों का विक्रय करने वालों का वेष बनाकर यहाँ आ रहे थे। मार्ग में दंडकारण्य में कुछ क्षण विश्राम के लिये रुके। और वहाँ पर घूमते-घूमते हम लोग तापसियों के आश्रम में पहुँच गये। अपने पुण्योदय से हमने वहाँ एक पूज्य माता को देखा। उनके द्वारा 'तुम लोग कहाँ से आये हो ?" ऐसा पूछे जाने पर हम लोगों ने राजपुरी का नाम लिया।

उनकी उत्सुक दृष्टि को देखकर हम लोगों ने कहा—

"मातः! हम लोग जीवंधर कुमार के अनुजीवी नौकर-चाकर हैं। काष्ठांगार ने एक समय उन्हें मारने के लिये...इतना वाक्य सुनते ही वे माता मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ीं।... जब वे सचेत हुईं तब हमने कहा—मातः! आप दुःख न कीजिये वे सकुशल हैं। हम लोग उनके दर्शन के लिये ही जा रहे हैं।...अनंतर अश्रु गिराती हुईं उन पुण्यमूर्ति ने भी मुझे अपना व आपका पवित्र चरित्र सुनाया... हम लोग आपको राजपुत्र समझ कर आज धन्य हो गये हैं। पुनः माताजी की आज्ञा लेकर हम यहाँ आये हैं।

जीवंधर को अभी तक यही निश्चय था कि मेरी जन्मदात्री माता स्वर्गस्थ हो चुकी हैं, मित्रों के मुख से माता के जीवित रहने का समाचार पाकर वे अपनी अज्ञानता पर अतीव दुःखी हुए। उस समय उनके हृदय में माता के प्रति प्रेम उमड़ पड़ा और वे उसे रोक नहीं सके। जिनका दर्शन आज तक उन्होंने नहीं किया है भला ऐसी अपनी माता के दर्शनों की उत्कंठा कैसे रोकी जा सकती है। वे माता के दर्शन के लिए इतने अधिक आतुर हो उठे कि सब कुछ बात भूल गये। ... जैसे-तैसे उन्होंने ससुर से आज्ञा ली और कनकमाला को भी सूचित करके अपने बंधु व मित्रों के साथ दंडकारण्य की तरफ प्रस्थान कर दिया।

(11)

तापसाश्रम को दूर से देखते ही स्वामी रथ से उतर पड़े, वे चलते हुए आगे बढ़े। पुत्र के शोक से क्षीणकाय माता विजया को देखते हुए कुमार उनके चरणों में गिर पड़े। माता ने तत्क्षण

ही हर्षविह्वल हो पुत्र को दोनों हाथों से उठाकर छाती से लगा लिया। जन्म के समय ही रक्षा का अन्य कोई उपाय न होने से माता ने जो पुत्र को छोड़ दिया था उस समय से आजतक वृद्धि को प्राप्त हुआ शोकसागर भी मानो इस समय मोदसागर बनकर उद्वेल ही हो गया हो।... नंदाढ्य को भी विजया ने अपना ही पुत्र समझा था....उस समय के विजया के पुत्र मिलन के दृश्य को देखकर तापस पत्नियाँ भी अपने हर्षाश्रुओं से सभी के स्नेहांकुरों को पल्लवित ही कर रही थीं....।

"हे पुत्रों! मेरी इच्छारूपी लता चिरकाल के बाद आज किसी पुण्य के योग से फलित हो गई है।"

"मातः! आज मेरे किसी असीम पुण्य का ही उदय है कि जिससे मुझे मेरी प्रसवित्री का साक्षात् दर्शन हुआ है।"

इत्यादि रूप से अपने सुख-दुःख की चर्चा करने के बाद विजया बोल पड़ती है—"पुत्र! क्या इसी तरह मेरे जीवन में तेरे राज्यसिंहासन पर आरूढ़ होने के समाचार भी मिलेंगे ? ओह...! आज उसके लिए साधन सामग्री और सेना आदि तेरे पास कहाँ हैं ? कहाँ तेरा वह विशाल साम्राज्य ? और कहाँ तेरा यह यत्र-तत्र भ्रमण ?...

"हे मातः! बस-बस, अब चिंता से बस हो। देखो! यह आप जैसी वीरप्रसूता सिंहनी का बालक एक महीने में ही अपने राज्य को हस्तगत कर लेगा। इस कार्य में अब अधिक विलंब की आवश्यकता नहीं है।.."

इस तरह से माता को सान्त्वना देकर कुमार कुछ क्षण के

लिए सबको दूर कर एकांत में माता के साथ आगे के कार्य के लिए विचार-विमर्श करने लगे। कुमार ने यह भी बताया कि गुरु की आज्ञा से ही मैं एक वर्ष के लिए चुप था अब वह समय आ चुका है बस एक माह ही शेष रहा है।...''

''मातः! मैं तो अनेकों सुख संपत्तियों के मध्य अपना समय व्यतीत कर रहा हूँ। किन्तु आप...मुझ जैसे पुत्र के होते हुए भी तापसाश्रम में.... हाय!हाय! आपका यहाँ घास में सोना और नीवार का आहार करना...। अब आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए और मामा के यहाँ चलिये।''

पुत्र की बात स्वीकार कर माता बार-बार पुत्र को शिक्षा दे रही हैं—''बेटा! काष्ठांगार बहुत ही दुष्ट स्वभावी है, तुम अभी उससे छिपकर ही रहना।''

''हाँ, हाँ, माँ! आप चिन्ता बिल्कुल मत करो। मैं आपकी आज्ञा के अनुकूल ही कार्य करूँगा।''

कुमार ने माता को अपने भाई के साथ मामा गोविंदराज के यहाँ भेज दिया और आप राजपुरी की तरफ चल पड़े।

(12)

राजपुरी के निकट उद्यान में मित्रों को ठहरा कर कुमार साधारण व्यापारी का वेष बनाकर शहर में घुसे और यत्र-तत्र शोभा देखते हुए घूमने लगे। किसी ऊँचे महल की छत से एक गेंद सहसा नीचे गिरी देखकर स्वामी ने ऊपर की ओर देखा। उस कन्या ने भी गेंद के नीचे गिर जाने से नीचे दृष्टि डाली। कुमार

के मन में अकस्मात् राग उत्पन्न हो गया। वे सोचने लगे—यह किसकी कन्या है ?...। पुनः कुछ मिनिट वहीं बाहर विश्रांति हेतु ऊँचे चबूतरे पर बैठ गये। उसी क्षण अंदर से सागरदत्त सेठ आये और बोले—''हे भद्र! आपके आगमन से आज मैं अपने को बहुत पुण्यशाली समझ रहा हूँ। आइये, आइये! मेरी इस कुटिया को पवित्र कीजिये।''

स्वामी यद्यपि स्वयं उस कन्या के लिए उत्सुक हो रहे थे फिर भी वे जितेन्द्रियमना महापुरुष अपनी उत्कंठा को व्यक्त न करते हुए गंभीर और शांतमुद्रा में सेठ के साथ अंदर जाते हैं। सेठजी उनका यथोचित सम्मान करके निवेदन करते हैं—

''हे महाभाग! मेरी कन्या के जन्म दिन एक ज्योतिषी ने कहा था कि 'तुम्हारे यहाँ के बहुत से अमूल्य रत्न जो आज तक नहीं बिके हैं वे जिस महापुरुष के आते ही बिक जायेंगे वह ही इस विमला कन्या का स्वामी होगा।' सो आपके चबूतरे पर बैठते ही मेरी वह रत्नराशि बिक गई हैं अतः अब मेरी इस कन्या को स्वीकार करके मुझे निश्चिन्त कीजिये।''

इत्यादि आग्रहपूर्ण वचनों से स्वामी ने सेठ की बात स्वीकार कर ली। शुभ मुहूर्त में विवाह हो गया। कुछ दिन वहाँ बिताकर कुमार विवाह के अलंकारों से विभूषित मित्रों के पास पहुँचते हैं सभी मित्र कुमार के पुण्य की प्रशंसा करने लगते हैं। इसी संदर्भ में एक बुद्धिषेण मित्र बोल उठता है—

''स्वामिन् इन कन्याओं के वरण में आपकी क्या विशेषता है ? यदि आप इस पुरुषद्वेषिणी सुरमंजरी का वरण कर लें तो

मैं समझूँ ? तब आप सचमुच महा सौभाग्यशालियों के शिरोमणि हो जायें ?''

कुमार उसी समय वहाँ से चल पड़ते हैं। अपनी रूप बदलने वाली विद्या से एक अति वृद्ध का रूप बनाकर हाथ में लकड़ी टेकते हुए खाँसते खखारते वहाँ दरवाजे पर पहुँच जाते हैं। और वे अंदर प्रवेश करने के लिए आगे बढ़ते ही जा रहे हैं।

हाथ में बेंत लिए दासियाँ पूछती हैं- ''आप कहाँ जा रहे हैं ?''

''मैं 'कुमारी तीर्थ' में स्नान के द्वारा अपना यह बुढ़ापा दूर करने आया हूँ।''

यह वाक्य सुनते ही इसका अर्थ न समझ कर बल्कि इसे पागल समझकर वे सबकी सब हँस पड़ी। सोचने लगीं—यदि हम लोग इसे रोके तो जरा-सा हाथ से छूते ही यह बेचारा मर जायेगा। पुनः हम लोगों को ब्राह्मण हत्या का पाप और लगेगा। यह बेचारा भूखा दिख रहा है...क्या करना चाहिए ?....पुनः कुछ सोचकर दो तीन दासियाँ अंदर जाकर बोलती हैं—

''हे स्वामिनी! जो वृद्धावस्था का मानो पति ही है ऐसा कोई एक अति कृश ब्राह्मण भिक्षा के लिए अंदर घुसा आ रहा है।''

चूर्ण की परीक्षा में तिरस्कृत होने के बाद से उसने नियम कर लिया था कि 'जीवंधर के सिवाय मैं अन्य किसी से विवाह नहीं करूँगी' तथा तभी से वह किसी भी पुरुष का मुख देखना तो दूर, उनसे स्पर्शित वायु का भी स्पर्श नहीं करती थी। उसने पिता के द्वारा चारों तरफ पहरा लगवा दिया था उसका नियम तो उसके मन के सिवाय और किसी को विदित नहीं था। उस

समय पता नहीं क्यों ? उसके पैर सहसा उठ पड़े। वह स्वयं उस आश्चर्यकारी बुढ़ापे से युक्त ब्राह्मण को देखने आ गई। तब तक वह वृद्ध बहुत कुछ अंदर आ चुका था। सुरमंजरी ने कहा—

''अतिशीघ्र इन वृद्ध महानुभाव को स्नान कराकर भोजन कराइये।''

जैसे-तैसे वृद्ध ने साँस छोड़ते हुए कुछ ग्रास खाया। पुनः वहीं पर एक उत्तम पलंग पर लेट गये। सुरमंजरी ने सोचा—बेचारा वृद्ध भोजन करके बहुत थक चुका है विश्रांति कर लेने दीजिये। वह वृद्ध सो रहा है, इधर रात्रि ने आकर सभी लोगों को भी सुलाना शुरु कर दिया।

अर्धरात्रि में वह वृद्ध बहुत ही सुंदर गाना गाने लगा, सुनकर आश्चर्यचकित सुरमंजरी कुछ सहेलियों को साथ ले उस कमरे में आई...।

पूछती है—''इस आश्चर्यकारी गान से तो आप साक्षात् जीवंधर स्वामी की स्मृति दिला रहे हैं।...क्या आपको और भी कुछ विद्यायें मालूम हैं ?''

''अवश्य। मेरा मनोभिलषित वस्तु को प्राप्त कराने में भी पूर्ण अधिकार है।''

''क्या आप मुझे इच्छित वस्तु की प्राप्ति करा सकेंगे ?''

''क्यों नहीं, देखो! तुम प्रातः कामदेव के मंदिर में चलकर विधिवत् पूजा करो....हाँ तो तुम्हारा मनोरथ तत्क्षण सफल हो जायेगा।''

कुमारी प्रातः पिता की आज्ञा लेकर पालकी में बैठकर

कामदेव के मंदिर में चलती है साथ में वृद्ध भी गाड़ी में बैठकर चल रहे हैं। वहाँ पहुँचकर...पूजा के अनंतर कन्या वृद्ध की तरफ देखती है।

"हे कल्याणि! अब कामदेव प्रसन्न हो चुके हैं। तुम आगे जाकर एकांत में खड़ी होकर अपना इच्छित वर माँग लो।"

"हे कामदेव! जीवंधर स्वामी मेरे स्वामी होवें।'

अंदर छिपे हुए बुद्धिषेण ने कहा—"तुम्हें वर मिला।"

उसी क्षण जीवंधर ने अपने असली वेष को प्रगट कर दिया। सुरमंजरी एकदम आश्चर्य से व लज्जा से भर गई। और जाने के लिए कदम उठाये ही थे कि जीवंधर ने—

"हे प्रियंवदे! अब जाने का प्रयास क्यों ?"

ऐसा कहते हुए उसे गाढ़ आलिंगन में आबद्ध कर लिया...।

पिता कुबेरदत्त ने इस हर्ष समाचार को सुनकर कुमार का स्वागत किया। अनंतर शुभ मुहूर्त में विवाह विधि संपन्न हुई।...जब जीवंधर कुमार मित्रों के मध्य उद्यान में पहुँचे मित्रों ने उनका अतीव सम्मान किया। अनंतर स्वामी मित्रों सहित पिता गंधोत्कट व माता सुनंदा से मिले। पुत्र के अतिशय अभ्युदय को देखकर माता-पिता हर्ष समुद्र में निमग्न हो गये। पुनः कुमार गंधर्वदत्ता व गुणमाला के यहाँ पहुँचे। सबको संतुष्ट करके एक दिन एकांत में पिता के साथ बैठकर राज्य ग्रहण संबंधी विचार-विमर्श कर रहे थे। तब गंधोत्कट ने यही राय दी कि आप मामा गोविन्दराज सम्राट के पास पहुँच कर इस कार्य को सम्पन्न करिये...।"

(13)

सम्राट गोविन्दराज, जीवंधर कुमार, कुछ अमात्यगण मंत्रशाला में बैठे मंत्रणा कर रहे हैं। इसी बीच एक मंत्री निवेदन करते हैं—

"महाराज! काष्ठांगार का भेजा हुआ दूत जो पत्र लाया है कृपया लेखपाल को बुलाकर उसे सुनिए। आखिर उसने क्या समाचार भेजे हैं? मालूम होने पर विचार में अधिक बल मिलेगा।"

"हाँ हाँ, ठीक बुलाओ लेखपाल को।"

लेखपाल पत्र पढ़ता है—"विदेह देश के धरणीतिलकपुर के महाराज गोविन्दराज से काष्ठांगार प्रणामपूर्वक निवेदन करते हैं कि आपको विदित ही है दुष्ट हाथी द्वारा राजा सत्यंधर की मृत्यु होने पर भी लोग मुझे बदनाम कर रहे हैं।....सो आप यहाँ आकर अपने न्याय के बल से मेरा कलंक दूर कीजिए।"

"ओ हो, मंत्रीगण! यह तो अपने को स्वर्ण अवसर मिल रहा है। स्वयं ही वह अपने नाश के लिए आह्वान कर रहा है। बस जल्दी ही सेना को सुसज्जित करो और शहर में घोषणा करवा दो।"

डिंडिम बजाने वाला जोर-जोर से कह रहा है—"महाराजा गोविन्दराज की काष्ठांगार से मित्रता हो गई है। अतः कोई शत्रु रूप में उनका नाम न लेवे। महाराजा साहब स्वयं राजपुरी के लिए प्रस्थान कर रहे हैं...।"

कुछ ही दिनों में विशाल सेना सहित गोविन्दराज राजपुरी के निकट उद्यान में पहुँच गए। काष्ठांगार के द्वारा भेजी भेंटों को

स्वीकार करके बदले में उन्होंने भी उत्तम-उत्तम भेंट भेजीं। चूँकि शत्रु से मित्रता बनाए रखना ही उन्होंने उचित समझा।

पुनः विजया और जीवंधर के साथ कुछ मंत्रणा करके उन्होंने काष्ठांगार की सम्मति लेकर घोषणा करा दी कि—"जो कोई अत्यंत सघन चंद्रक यंत्र से नियन्त्रित लक्ष्यभूत इन तीन वराह के पुतलों को बाण से एक साथ गिरा देगा वही मेरी पुत्री लक्ष्मण का पति होगा।"

कुछ दिन में स्वयंवर मण्डप चोल, केरल, पांड्य, मागध, मालव, काश्मीर आदि देशों के राजाओं से खचाखच भर गया। कितने ही राजाओं ने अपने बाण चलाए किन्तु अपनी असफलता पर लज्जित हो गए। साढ़े छह दिन व्यतीत हो जाने पर...कुमार जीवंधर स्वयंवर मंडप में पधारे। देखते ही काष्ठांगार के होश उड़ गए। अरे! इसे तो मथन साले ने मार डाला था पुनः यह यहाँ कैसे ?...

जीवंधर कुमार ने लीलामात्र में यंत्र पर चढ़ कर बाण छोड़ा और तीनों वराहों को एक साथ पृथ्वी पर गिरा दिया। चारों तरफ से मंगलवाद्य बज उठे।...पुनः मामा ने उच्च स्वर से कहा—"ये जीवंधर कुमार महाराजा सत्यंधर के पुत्र हैं। ये मेरी छोटी बहन विजया के नंदन व मेरी पुत्री के बल्लभ चिरकाल तक इस पृथ्वी पर जयवंत होवें।"

इतना सुनते ही स्वामिभक्त के द्वारा किए गए जयकारों की ध्वनि से आकाशमंडल गूँज उठा। जब....पद्मास्य आदि के समझाये जाने पर भी काष्ठांगार ने राज्य छोड़ना स्वीकार नहीं

किया प्रत्युत युद्ध के लिए तैयार हो गया। तब नीतिप्रिय श्रेष्ठ राजागण जीवंधर के पास आ गए और निकृष्ट राजागण काष्ठांगार के पास पहुँच गये।

देखते-देखते घमासान युद्ध होने लगा। बहुत समय तक युद्ध होने के बाद खून की बहती हुई नदी को देखकर दया के नाथ जीवंधर स्वामी का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने सोचा बेचारे अन्य राजाओं के क्षय से क्या प्रयोजन ? बस वे काष्ठांगार की तरफ बढ़े...।

तब काष्ठांगार ने कहा—"हे कुरुवंश शिरोमणि! तुम मेरे सामने क्यों आ रहे हो ? क्या अपने पिता से मिलने के लिए उत्सुक हो रहे हो ?"

स्वामी बोले—"अरे कृतघ्नी नराधम! तेरा मरण समय अब निकट ही है, अब तू क्यों भयभीत हो रहा है ?"

पुनः काष्ठांगार कहता है—"अरे नीच वणिक्पुत्र! तुझमें शक्ति है क्या मेरे को मारने की ?"

"आ, और देख !..."

ऐसा कहते हुए जीवंधर ने शक्ति नामक शस्त्र से उसके शरीर के खंड-खंड कर दिए एवं युद्ध को रोकने वाली और विजय को सूचित करने वाली विजयपताका फहरा दी। उसी समय गोविन्दराज महाराज ने हर्षाश्रु से पूरित हो कुमार का गाढ़ आलिंगन किया और बोले—"मेरी विजया बहन आज अपने नाम को सार्थक करते हुए 'वीरसू' हुई हैं और मेरी पुत्री वीर पत्नी हुई है।"

तमाम राजागण, कुमार जीवंधर को प्रणाम कर रहे हैं और कुमार सबका यथोचित अभिवादन करते हुए गंधोत्कट पिता, बंधु आदि से मिलते हैं। अनंतर सबसे प्रथम स्वामी जिनालय में पहुँचकर महाभिषेक पूजा करते हैं। उसी क्षण सुदर्शन यक्षपति आ जाता है और स्वामी के राज्याभिषेक का उत्सव प्रारंभ हो जाता है। वह देव क्षीरसमुद्र आदि के जल से भरे हुए स्वर्ण कलशों से स्वयं स्वामी का राज्याभिषेक करता है। अन्य राजागण आदि भी इस महोत्सव में भाग लेते हैं।

''काष्ठांगार के रनिवास में किसी को भी किंचित् मात्र क्लेश न दिया जाए। सभी कैदियों को बंधनमुक्त कर दिया जाय, व बारह वर्ष तक इस राज्य में किसी से कर—टैक्स नहीं लिया जावेगा।''

पुनः उन्होंने गंधोत्कट सेठ को लोकपूज्य वृद्ध राजा के पद पर, दोनों माताओं को राजमाता के पद पर, नंदाढ्य को युवराज के पद पर व मित्रों को महामंत्री आदि यथायोग्य पदों पर स्थापित किया।

अनंतर गाँव में ढिंढोरा पीटते हुए डिंडिमकार ने सूचना करना शुरु कर दी—''आज से सात दिन तक सब लोग खूब उत्सव मनावें। खीर का भोजन करें और जिनेश्वर की भक्ति पूजा में तत्पर हो जावें।''

(14)

विजया रानी पुत्र के विवाहोत्सव की विशेष तैयारी में संलग्न हैं। आज राज्य प्राप्ति के सातवें दिन जीवंधर के विवाह का मुहूर्त है। बहुत बड़े आयोजनों के साथ विवाह विधि संपन्न

की जा रही है।

जनता कह रही है—''अहो! कहाँ इसका श्मशान में जन्म ? और कहाँ फिर से राज्य की प्राप्ति ?

विजया पुत्र के इस आठवें विवाह को स्वयं सम्पन्न कराकर पुत्र विवाह के सुख का अनुभव कर रही हैं।

अनंतर जीवंधर महाराज ने अपनी रानी पद्मा, क्षेमश्री और कनकमाला को भी बुला लिया है। गंधर्वदत्ता, गुणमाला, पद्मा, क्षेमश्री, कनकमाला, विमला, सुरमंजरी और लक्ष्मणा ये आठों रानियाँ आपस में अतिशय प्रेम को धारण करते हुए प्रसन्न हैं।

स्वामी ने गंधर्वदत्ता को पट्टरानी पद प्रदान कर दिया है तथा अनेक वर्ष तक विजया माता को आश्रय देने वाले एवं यह राजमाता हैं ऐसा न जानकर भी उनके साथ अकृत्रिम वात्सल्य रखने वाले उनके सुख में सुख और दुःख में दुःख का अनुभव करने वाले उन तापसी मुनियों व उनकी पत्नियों को भी कल्पना से अधिक मान-सम्मान व दान देकर पुनः उन्हें सम्यक्त्व व सच्चे धर्मरूपी निधि से संतृप्त कर दिया।

उस समय चारों तरफ जनता के मुख से यही ध्वनि निकलती है कि अब हम लोग सनाथ हुए हैं। क्योंकि काष्ठांगार के अन्यायों से, कष्टपूर्ण व्यवहारों से हम लोग अत्यधिक दुःखी हो चुके थे। अब प्रजावत्सल जीवंधर महाराज हम लोगों को सुखी रखते हुए चिरकाल तक पृथ्वी पर समृद्धि को प्राप्त होते रहें। इत्यादि....।

किसी समय राजा जीवंधर कुशल शिल्पियों द्वारा एक

विशाल जिनमंदिर[1] का निर्माण करवाते हैं। उसमें लगे चित्र-विचित्र मरकत, पुखराज, हीरा, मोती, माणिक्य रत्न अपनी आभा से सूर्य का तेज और इंद्रधनुष के सौन्दर्य को भी तिरस्कृत कर रहे हैं। उस मंदिर में जिनेन्द्रदेव की रत्नमयी प्रतिमाएँ विराजमान करते हैं। विशेष धूमधाम से प्रतिष्ठा महामहोत्सव होता है जो कि भव्य जीवों के अनंत जन्मों के संचित भी पाप पंक को प्रक्षालित कर देता है। ऋद्धिधारी मुनियों के आते-जाते रहने से और देवगणों को नित्य पूजा हेतु बुलाये रहने से वह जिनालय अकृत्रिम चैत्यालय के सदृश शोभा प्राप्त कर रहा है। वहाँ पर नित्य ही महोत्सव होते रहते हैं तथा महामह आदि विधि-विधानों के निमित्त से कभी-कभी पक्षोत्सव और मासोत्सव भी हुआ करते हैं।

स्वामी प्रतिदिन उत्तम पात्रों की प्रतीक्षा करते हैं। स्वयमेव अपने हाथ से मुनियों को, आर्यिकाओं को आहारदान देकर अपना जीवन पवित्र मानने लगते हैं। हमेशा ही उस नगर में याचकों का ताँता लग रहा है। सबको मुँहमाँगा दान दिया जाता रहता है। सदा ही सदावर्त नाम की भोजनशाला में अगणित लोग भोजन किया करते हैं...।

बहुत कुछ दिन व्यतीत हो चले हैं। विजया पुत्र के साम्राज्य को देखकर अपना जीवन सफल कर चुकी है। अब उनके मन का बीजभूत वैराग्य अंकुरित हो उठा। उन्होंने स्वयं अपने जीवन

1. जीवन्धर चम्पू।

में जो सुख-दुःख और पुनः सुख देखा है, वही उनके वैराग्य का मूल आधार है। जीवंधर स्वामी के अत्यधिक रोकने पर भी माता विजया ने बार-बार पुत्र को वैराग्य की बातें व संसार की स्थिति समझा-समझा कर जैसे-तैसे पुत्र को अनुकूल किया व बहन सुनंदा के साथ जाकर जिनपूजा करके विशाल संघ की गणिनी 'पद्मा' नामक आर्यिका के समीप आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली है। उस समय स्वामी माता के मोह से अत्यधिक विह्वल हो रहे थे। गणिनी आर्यिका के द्वारा बहुत कुछ उपदेश दिए जाने के बाद वे कुछ शांत हुए और बार-बार माता के चरण छूते हुए याचना करने लगे–"हे मातः! आप दोनों इसी नगरी में रहिए, यहाँ से अन्यत्र विहार करने का स्मरण भी मत कीजिए।"

बहुत कुछ अनुनय विनय के बाद माता ने कहा–"ऐसा ही होगा।"

तब जीवंधर महाराज अपने मातृ विरह के शोक को कुछ हल्का करते हैं और राज्य का पूर्ववत् प्रतिपालन कर रहे हैं।..... और समय अपनी द्रुतगति से चल रहा है।

(15)

बसंत ऋतु के मधुर आगमन से फूल बगीचे जब कोकिलाओं की मधुर ध्वनि से कामरस के रसिक दंपत्तियों को अपनी ओर बुलाने लगे, तब सभी गृहस्थ लोग 'मैं पहले मैं पहले' इस भाव से मानो जल्दी-जल्दी बगीचों में पहुँचने लगे...।

उस समय महाराजा जीवंधर भी रानियों की अतीव उत्कंठा

देखकर वनक्रीड़ा के लिए चल पड़ते हैं। वहाँ पहुँच कर अपनी अंगनाओं के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ा व मनोविनोद करते हुए सबको प्रसन्न करते हैं। पुनः कुछ क्षण विश्रांत के लिए एक वृक्ष के नीचे सुंदर स्फटिक आसन पर बैठ जाते हैं, वहीं पर सामने बंदरों का झुण्ड भी क्रीड़ा करने में तत्पर है।

अपने पति एक तरुण वानर को अन्य वानरी के साथ भोग करते हुए देखकर एक वानरी क्रोध के आवेश में चिल्लाने लगती है। तब वह वानर उसके पास आकर उसे प्रसन्न करने की कोशिश कर रहा है किन्तु वह रुष्ट हुई एक तरफ बैठी है। उस समय मायाचार में पंडित वानर मृतकवत् पड़ गया। वह वानरी घबराई हुई आकर उसे सँभालने लगती है व मृतक जैसा देखकर रुदन करती हुई बार-बार उसका आलिंगन करने लगती है। वानर प्रसन्न होता हुआ उठ बैठता है व दौड़कर कटहल के वृक्ष पर चढ़ जाता है। एक बहुत बड़े कटहल फल को तोड़कर लाकर नाखूनों से उसे छीलकर वानरी को दे देता है।

इसी बीच किशोर उम्र का वनपाल डंडा लिए हुए आकर वानर वानरियों को धमका कर उसके हाथ से पनसफल छीन लेता है, बेचारे वानर घबराकर यत्र-तत्र भागने लगते हैं।

स्वामी बहुत ही कौतुकपूर्ण दृष्टि से इस दृश्य को देख रहे थे। उन्हें उसी क्षण वैराग्य हो जाता है। वे सोचने लगते हैं–

"ओह! 'न केवल जीवों का अभ्युदय ही बलवान के अधीन है अपितु उनका जीवन भी बलवान के अधीन है।' बेचारे इन दीन वानर युगल को उनकी इस क्रीड़ा के मध्य कैसा दुःख आ

पड़ा ? ओह! यह घटना तो मुझ पर ही घटित हो रही है। 'यह वानर तो काष्ठांगार के सदृश दूसरे की वस्तु को लेकर भोगने वाला है और यह फल को छीनने वाला वनपाल सर्वथा मेरे समान आचरण करने वाला है।" राज्य को प्राप्त कर मेरे तीस वर्ष भोगों में व्यतीत हो गये। इन तुच्छ भोगों से क्या कभी किसी को तृप्ति हुई है ? क्या यह राज्य कभी किसी एक का हुआ है ? मैं तत्त्वज्ञानी होकर भी इन भोगों में कैसे आनंद मान रहा हूँ ?"

स्वामी की मुखमुद्रा को देख गंधर्वदत्ता आदि रानियाँ चिंतित हो उठीं। उन्हें चारों तरफ से घेरकर मनोरंजन से उनको रिझाने लगीं....किन्तु स्वामी उस समय द्वादश अनुप्रेक्षाओं के चिन्तन में निमग्न हो रहे हैं। पुनः मंत्रियों को आदेश देते हैं–

"मंत्रिगण! जिनमंदिर में महामह पूजा की तैयारी कराइये।'

"जो आज्ञा महाराज!"

जीवंधर महाराज जिनमंदिर में पहुँचते हैं। भावभक्ति से विभोर हो जिनेन्द्र का महाभिषेक पूजा विधि सम्पन्न करते हैं। पुनः मानो अपने पुण्योदय से ही जो पधारे हैं, ऐसे चारण ऋद्धिधारी मुनियों की प्रदक्षिणा देकर विधिवत् पूजा भक्ति करके उनके मुखारबिन्द से धर्मोपदेश सुनकर अपने पूर्वभवों की जिज्ञासा प्रगट करते हैं–

"भगवन्! पूर्व भव में कौन से शुभ-अशुभ कार्य किये थे कि जिनके फलस्वरूप असीम वैभव आदि सुख को व जन्मते ही माता-पिता के वियोगजन्य दुःख को भोगना पड़ा है ?"

"कुरुवंशशिखामणि! आप पूर्वजन्म में धातकी खण्ड के भूमितिलक नगर में राजा पवनवेग के पुत्र यशोधर कुमार थे।

किसी दिन उद्यान में क्रीड़ा हेतु आप विशाल परिकर के साथ पहुँचे। वहाँ के एक सरोवर में बहुत से राजहंस भयभीत हो ऊपर आकाश में उड़ गये। एक छोटा-सा हंस शिशु जिसके अभी पंख नहीं आये थे वहीं कमल-पत्र पर लुढ़कता रहा। उस प्रिय हंस शिशु को देखकर आपने अपने किंकरों से मंगवा लिया और उसे घर पालने का विचार किया। उसके माता-पिता पुत्र वियोग से विह्वल हो अत्यधिक करुण क्रंदन करते हुए आकाश में चिल्लाते रह गये।

आप हंसशिशु को घर लाकर सोने के पिंजड़े में रखकर उसे प्रतिदिन खीर का भोजन कराते थे। जब आपके पिता महाराज पवनवेग ने यह समाचार सुना उन्होंने उसी क्षण बुलाकर समझाया और "यह पाप कार्य है" ऐसी शिक्षा देकर अणुव्रत, सम्यक्त्व आदि का उपदेश दिया। तुमने भी 'मुझ अज्ञानी ने बिना ज्ञान के यह गलत कार्य किया है' ऐसा पश्चात्ताप करते हुए उस शिशु को माँ-बाप से मिला दिया। अनंतर पापों की शांति हेतु महापूजा की। पुनः संसार से वैराग्य हो जाने से माता-पिता के अति रोकने पर भी अपनी आठों पत्नियों के साथ दीक्षा ले ली। तपश्चरण के प्रभाव से स्वर्ग सुख का अनुभव कर अब राजा जीवंधर हुए हो। उस हंस के शिशु को आपने सोलहवें दिन माँ बाप से मिलाया था।

1. उत्तरपुराण में ऐसा कथन है कि "तुम्हारे किंकर ने क्रंदन करते हुए शिशु के पिता हंस को मार डाला था पुनः माता के संबोधन से तुमने सोलहवें दिन उस शिशु को उसकी माँ हंसिनी के पास भेज दिया था। फलस्वरूप तुम्हारे पिता का मरण व जन्मते ही माता से जुदा होकर सोलह वर्ष में वापस मिलना हुआ है। (उत्तरपुराण, पर्व 75)

उसी के फलस्वरूप तुम सोलहवें वर्ष अपनी माँ से मिले हो उस बालक को माता-पिता से वियुक्त कराने के कारण ही जन्मते ही तुम्हें अपनी माँ से जुदा होना पड़ा है तथा धर्म व तपश्चरण आदि के प्रभाव से तुमने उत्तमोत्तम सुख संपत्ति प्राप्त की है।"

राजा जीवंधर पुनः-पुनः मुनिराज को नमस्कार कर राजमहल पहुँचते हैं। ज्योतिषी से शुभ मुहूर्त निकलाकर भाई नंदाढ्य को राज्यभार सँभालने का अनुरोध करते हैं। किन्तु उन्हें भी तपोराज्य के लिए उत्कंठित देख गंधर्वदत्ता के पुत्र सत्यंधर कुमार का राज्याभिषेक कराके उचित शिक्षा देकर पत्नियों व मंत्रियों के द्वारा अतीव रोके जाने पर भी दीक्षा के लिए प्रस्थान करने वाले हैं।...इसी मध्य स्वामी के उपदेश से विरक्तचित्त होती हुई गंधर्वदत्ता आदि आठों रानियाँ, नंदाढ्य आदि बंधु व मित्रगण, मामा, गोविन्दराज आदि अनेक राजागण स्वामी के साथ दीक्षा के लिए तैयार हो जाते हैं।

इधर महाराज के पुण्योदय से सुरमलय[1] नामक उद्यान में वीर भगवान् का समवसरण आता है। सुनते ही भक्ति से गद्गद सब लोग समवसरण में पहुँचते हैं। राजा जीवंधर प्रदक्षिणा करके अतिशय भक्ति विभोर हो स्तुति व पूजा करते हैं। पुनः प्रार्थना करते हैं – "हे भगवन्! मैं इस संसार में

1. उत्तरपुराण, पर्व 75

जन्म-मरण के दुःखों से सदा पीड़ित होता हुआ अब इस भवरोग से सर्वथा ऊब चुका हूँ अतः आप जैसे भवरोगों को दूर करने वाले उत्तम वैद्य के मिल जाने पर अब मैं अपना इलाज कराना चाहता हूँ। कृपासिंधो! अब मुझे अपनी वचनामृत संजीवनी से स्वस्थ कीजिए।...

इत्यादि प्रकार से याचना करते हुए गणधर की आज्ञानुसार इन लोगों ने सर्व परिग्रह का त्याग कर दिगम्बर जैनी दीक्षा ग्रहण कर ली। रानियाँ भी गणिनी चंदना आर्यिका के समीप एक साड़ी मात्र शरीर पर धारण कर आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर लेती हैं।

उसी समय यक्षों का इंद्र सुदर्शन वहाँ समवसरण में आता है, प्रभु की वंदना-भक्ति करके स्वामी जीवंधर महामुनि की नाना स्तोत्रों से स्तुति करता है और पुनः-पुनः उस यतिश्रेष्ठ को नमस्कार करते हुए तृप्त नहीं होता है। लौट-लौट कर वापस आता है और बार-बार स्तवन करते हुए अपने स्थान को चला जाता है।

स्वामी घोरातिघोर तपश्चरण करते हुए एक दिन मोहकर्म की सेना को पराजित कर देते हैं और घातिया कर्मों पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं। उसी समय केवलज्ञान साम्राज्य को प्राप्त कर सम्पूर्ण सुरों और असुरों से ही नहीं, गणधर देवों से भी वंद्य हो जाते हैं। कुछ काल तक पृथ्वीतल के भव्यजीवों को धर्मामृत का पान कराते हुए अंत में विपुलाचल[1] पर्वत पर पहुँचते

1. उत्तरपुराण, पर्व 75

हैं। वहाँ योग निरोध करके शेष अघातिया कर्मों की सेना को जीतकर अक्षय, अनंत, अव्याबाध निर्वाण साम्राज्य को प्राप्त करके सिद्धिकांता के बल्लभ हो जाते हैं।

"शाश्वत सुख के अधिनायक वे जीवंधर स्वामी अपने भक्तों को भी निर्वाण सम्पत्ति प्रदान करेंगे ऐसे विश्वास के साथ ही उनके चरणों में मेरा शत-शत नमन।"

□□